आजकल भी इस कहानी युगमें कोई विरल ही देश और समाचार पत्र बचा होगा कि जिसमें कहानीके रूपमें किसी न किसी इच्छित विषयपर कुछ न कुछ प्रकाश न डाला जाता हो। यहांतक कि लोक भी अधिकतर सबसे पहले कहानी ही पढ़ते हैं, और कहानीके भावके अनुसार उनका मन भी उधर ही झुक जाता है। वास्तवमें कहानीमें कुछ ऐसा ही जादू है कि—जिससे मनुष्यकी भावना कहींसे कहीं पहुंच जाती है। यदि कहानी नव रसोंसे पूर्ण हो तो मनुष्य रोये या हँसे बिना न रहेगा। कहानी-सम्राट् प्रेमचन्दजीकी कहानियोंने तो यह सिद्ध कर दिखाया है कि किसी पतित देश-समाज और जातिको जागृत करके उठाना हो तो उनके सामने जीती-जागती चित्ताकर्षक कहानियां भी साक्षात् रूपमें खड़ी की जायँ।

परन्तु अत्यन्त खेदके साथ लिखना पड़ता है कि—हमारी व्यापारकला प्रधान जैन समाजमें इस प्रकारकी कहानियोंका प्रचार कहानी-पुस्तकों और समाचार-पत्रों द्वारा बहुत ही कम होता है। इस विषयमें और समाजोंमें तो खूब ही ऊहापोह चल रहा है। मगर अपनी इस सुप्त और प्रसुप्त समाजमें तो इसका कहीं जिकर तक भी नहीं किया जाता।

यही कारण है कि—मैंने यह "गल्प-कुसुमाकर" नामक पुस्तक लिखकर इसके द्वारा अपनी समाजमें इस ओर रुचि पैदा करनेकी मानो एक अपील-सी की है और साथ-साथ उन महापुरुषोंका अनुकरण भी करनेकी चेष्टा की है।

इसके अतिरिक्त मुझे यह भी कह देना आवश्यक प्रतीत होता

है कि मैंने कभी इससे पहले कहानीकी कोई पुस्तक नहीं लिखी है। न कभी कोई हिन्दीकी परीक्षा ही दी है। जिसके कारण शायद उच्च कोटिके हिन्दी लेखकों और पाठकोंको मेरी यह त्रुटिपूर्ण भाषा खटके बिना न रहेगी। परन्तु फिर भी मैंने इन भाषा दोषोंके रहनेपर भी अपने भावोंको न रोककर समाजके नेताओंका लक्ष्य समाजकी अनेक आवश्यक बातोंका अनुभव करानेके लिये इस पुस्तकको लिखा है और इस विषयमें मैंने जो कुछ परिश्रम किया है उसमें मेरे अन्तेवासी शिष्य सुमित्र भिक्षुका अनुरोध भी एक मुख्य कारण है, इन दो निमित्तोंसे भाषा दोषकी कुछ उपेक्षा-सी भी की गई है। इसके अतिरिक्त इनकी बनाई हुई कई कहानियां इस पुस्तकमें सम्मिलित हैं जो कि शिक्षाप्रद और भावपूर्ण तथा सारगर्भी हैं। और मैंने कई काल्पनिक कहानियां भी लिखी हैं जिनका आशय मात्र देश, समाज और जातिका उत्थान तथा सुधार ही है। इसमें अनाथी मुनिकी कहानी श्रीराम-चरित उपाध्यायजीकी लिखी हुई है। उक्त महानुभाव हिन्दी-भाषाके विश्वमें एक अद्वितीय उच्च लेखक हैं, इनकी कहानी अत्युपयोगी और सात्विक होनेके नाते आदरका स्थान प्राप्त है और दोनों महोदयोंका साथी लेखकके नाते पूर्ण उपकार मानता हूं।

इस प्रकार यह त्रिवेणी संगम इस कहानी पुंजमें आधुनिक नव-युवक जो कि अपनेको कहानीके रसिक समझते हैं तथा कहानियोंके ढंग से आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक शिक्षा लेना चाहते हैं उन्हें यह गल्प-कुसुम कर-कमलमें प्रवृत्ति, सार, ग्रहण प्रभु-अर्पण

देश-सेवा, अछूतोद्धार, विद्या प्रचार और साम्यवादकी शिक्षा दिये बिना कभी न रहेगा। अतः मुझे यह लिखनेकी आवश्यकता नहीं है कि इस पुस्तकमें कहानियोंके बहानेसे क्या-क्या उपयोगी अंश समझाया है।

यदि हमारे हिन्दी पाठकोंने इससे कुछ भी लाभ उठाया और अपने उज्ज्वल चरित्रका संगठन और मनोबलका विकास किया तो यह प्रवृत्ति और परिश्रम सफल समझा जायगा और भविष्यमें इसी प्रकारकी कुछ और भी सेवा करनेका प्रयत्न किया जायगा।

प्रार्थी—

ज्ञातृपुत्र महावीर जैन संघका लघुतम सेवक

—'पुप्फ भिक्खु'।

॥ ॐ ॥

नमोत्थुणं समणस्स भगवओ णायपुत्त महावीरस्स

गल्प-कुसुमाकर

लेखक—

ज्ञातपुत्र महावीर जैन-संघीय मुनि श्री फ़ूल
चन्द्रजी महाराजका चरण धूलिकण
"पुप्फ भिक्खु"

[अर्थ सहायक]

दानवीर-राजाबहादुर सेठ ज्वालाप्रसादजी र

ज्वालाप्रसाद, जगदम्बाप्रसाद

नं० ७१, बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता।

प्रकाशक—

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन (गुजराती) संघ

नम्बर २७, पोलोक स्ट्रीट

कलकत्ता

वीराब्द २४[illegible] प्रथम संस्करण [illegible] सन १९३[illegible]

विषयानुक्रमणिका

उपादेय और पाठ्य पुस्तकें

नव पदार्थ ज्ञानसार	।
आगम शब्द प्रवेशिका	=)
उत्तम प्रकृति	-)
गल्प-कुसुमाकर	।।=)
बारामासा नेम राजुल	=)
बंगाल विहार	अमूल्य
श्रावक व्रत पत्रिका	"
स्वतन्त्रताके चार द्वार	"
महावीर निर्वाण और दिवाली	"
पर्य्यूषण पर्व्व	"
[illegible]न्ति प्रकाश	"
[illegible]वीर-भगवान्	"
[illegible]नुके उपदेश	"

नोट—अमूल्य पुस्तकोंके लिये ।।=) के टिकिट आने चाहिये।

गल्प-कुसुमाकर

दूसरी प्रार्थना

'उसने अपने भाईको बख्श दिया'

[१]

हमारी कहानीका सम्बन्ध पुराने रूपवासकी उस मोड़दार गलीसे है, जिसमें अबसे ४० वर्ष पहले ऊधव और माधव नामके दो दीर्घी भाई रहते थे। ये बड़े परिश्रमशील और कमाऊ थे। मगर ऊधव प्रकृति का क्रूर था, लेकर देना नहीं जानता था, वैर बदला लेनेमें कर्मठ और नृशंस था। वह किसीको क्षमा करना नहीं जानता था। नौकरी न देना या कम देना नया नमूना बताकर पुराना या रद्दी माल गाहकके गले मढ़ देना तो कोई इससे ही सीख ले. संसार भरका धन मेरे घरमें आ जाय यही इसकी इच्छा रहती थी

माधव प्रकृतिका सरल, हाथ और जबानका सच्चा, मनका साफ और नाइक जितेन्द्रिय था. भाईके आचरणोंपर सदा असन्तुष्ट रहा करता था

वह सदैव उसे समझाता था कि पाप, झूठ, चोरी, ठगी, बेईमानी, फरेबसे पैसा पैदा करके दनादन दान पुण्य करने, ब्रह्मभोज, गंगोज, सदाव्रत साधु-भोजन देनेकी अपेक्षा पापको छोड़कर सन्तोषमें श्रमी जीवन बनाये रखना लाख दर्जे अच्छा है। गोलेकी चोरी और सुईका दान मुझे पसन्द नहीं। अत्याचारसे कमाकर दान करना एक प्रकारका घृणित पाप है। इधर गरीबोंके गले काटना और उधर सदाव्रत लगाना अपने भविष्यमें मानों शत्रुका बल बढ़ाने जैसा है। मैं इस पाखण्डसे नाम पैदा करना गुनाह समझता हूं। इसीसे जब आप सन्ध्या करते हैं तब लोग यह आवाज़ कसते हैं कि *तालाबका भगत (बगुला) बैठा है।* मेरी मानो तो अनीति और अन्याय छोड़ दो, बनावटी माल देना तथा धोखा देना छोड़ दो, यह परमात्माकी सची साधना है। मैं परमात्माका नाम मुंहसे नहीं रटता मैं तो चरित्रसे शुद्ध रहना पसन्द करता हूं। लालटेनका नाम लेनेसे कभी घरका अन्धकार न भागेगा। बाहरसे शीशी धोकर साफ किया चाहे तो क्या बनता है।

मगर ऊधव पत्थरका घाट था, इसे एक न लगती थी। माधवके उपदेशपूर्ण शीतल वाणीसे भी आग बबूला हो उठता। खीजकर असभ्यतासे पेश आता। एक दिन बातकी बातमें दोनों भाइयोंमें इसी कारण *हाथा-पाई तककी नौबत आ गई।* माधवको भारी चोट आई, बड़े भाईसे मार खाकर भी वह आक्रमण न करना चाहता था। जनताको परिचय दे दिया कि ईश्वरको न्यायकारी और दण्ड देने-वाला बनानेवाले मनुष्योंके ये काले कारनामे आपकी आंखोंके सामने

साल तो चुप हूं। पर कुछ पासमें होनेपर अगले ही वर्ष ठप्पेलाकर यहीं दुकान खोलूंगा और फिर देखना मेरी कैसी दुकान चलती है। मुझसे प्रवीण छीपी यहां कोई नहीं है। एक ही सालके बाद तुझे फिर तो चांदीमें लाद दूंगा। यह सब अपने दमपर और कामके बलपर करके दिखला दूंगा। पर उनकी तरह परमात्माका नाम कभी न लूंगा आज-कल बहुतसे उसका नाम जपनेवाले धूर्त, पाखंडी, बगुलाभगत, दीन-पीड़क होते हैं, और होते हैं परले सिरेके बेईमान। परन्तु मैं तो चोरी, जारी झूठ, कपट कभी न करूंगा, न किसी दीनको ही सताऊंगा। चाहे मेरी खाल ही क्यों न उधड़ जाय। चाहे मैं भूखा ही क्यों न मर जाऊं सुना हरो। हरदेईने मानो सिर हिलाकर उसके प्रस्तावका अनुमोदन कर दिया। माधवका मस्तक गर्वसे ऊंचा हो गया। हरदेईको एक बार सम्मानकी तथा स्वाभिमानकी दृष्टिसे देखकर तथा सिर हिलाकर यह कहता हुआ प्याज और जुवारकी रोटी खाने लगा कि जब ये सुखके दिन आये और चले गये तब ये भी न रहेंगे।

[३]

माधवसे नगरसेठने कहा कि जरा हाथकी हथेली तो फैलाओ। माधवने ज्योंही हथेली फैलाई उसने तुरन्त १०) रुपये रखकर कहा कि - जा अलवरसे इनसे ले आ और अपनी दुकान कर ले माधव।

माधव — और ये रुपये कहांसे पाये हैं ? क्या जुआ तो नहीं खेला था

लालचन्द — [illegible] माधव।

माल अफसर—तुम्हारी डिब्बीमें कितनी गिन्नियां थीं ?

बलवन्तसिंह—जी, २५ थीं।

माल अफसर—अब कितनी हैं ?

बलवन्तसिंह—जी, १० हैं।

माल अफसर—१५ कहां गईं ?

बलवन्तसिंह—मुझे मालूम नहीं। इसने मुझे रूमाल दिया शायद १५ इसने निकाली हैं।

माल अफसरने खजानेसे १५ गिन्नियां मँगवाकर उस डिब्बी डालनी आरम्भ कीं। मगर पांचसे अधिक गिन्नियां उसमें न आई

माल अफसर—सर्दार बलवन्तसिंह ! इस डिब्बीमें जब ५ अधिक दीनार ही नहीं आते, तब बताइये यह डिब्बी आप क्योंकर हो सकती है। जाइये, आप अपनी चीज कहीं अन्य खोजियेगा।

अपना-सा मुँह लेकर बलवन्तसिंहके चले जानेपर हाकिमने क कि तुमने इसका गिरा हुआ रूमाल इसको क्यों दिया था ?

माधव—सर्कार ! पाई चीज पराई होती है, अपनी नहीं। इस अतिरिक्त आज महात्माओंसे चोरी न करने और असत्य बोलनेकी जो प्रतिज्ञा ली थी भला उसे क्योंकर तोड़ देता। मेरे लि दो प्रणोंपर अटल रहना ही परमात्माका जाप करना है। इनक ही परमात्माका रूप समझता हूं, और पाखण्ड मुझ नहीं आते

माल अफसरने उसपर प्रसन्न होकर १० गिन्नियां उसको सत्य बोलनेके पुरस्कारमें धन्यवाद देकर अर्पण कर दीं

एक दिन सांझ होते-होते एक आदमी माधवसे आकर मिला—माधवने पूछा तुम्हें यहां किसने भेजा है ?

आगन्तुक—जी, ऊधवने भेजा है।

माधव—ऊधवने। क्या सुन रहा हूं। ऊधवने भेजा है? मगर क्या काम है। किस लिये भेजा है ?

आगन्तुक—जी। वह बीमार हैं, अन्त समय आया हुआ है। तुम्हारे विना तड़प रहा है। यदि उसे अपनी जरा सूरत दिखा आओ तो वह सुखसे मर सकेगा। उसने मुझे इसीलिये भेजा है।

[६]

माधव आज पूरे ३६ सालके बाद घर आया है। साथमें पांचों लड़के और चारों लड़कियां भी हैं। घरमें घुसते ही माधवके साथ साथ सबने ऊधवके चरण छुए। माधव सिरहाने बैठकर सिरपर मक्खनकी मालिश करने लगा। हरदेई पंखा झल रही थी। सब लड़के-लड़कियां चारों ओर मेहदीके गुच्छेकी तरह प्रसन्न मुख खड़े थे और माऊकी ओर एकटक देख रहे थे। इस रचनाको देखकर ऊधवकी आंखें सजल हो आईं। गला रुंध गया। माधवने गंगाजल मुंहमें छोड़ा। उसे एकदम सुध आई और कुछ हिम्मत पाकर माधवके हाथको अपने हाथमें लेकर बोला कि—माधव! कई दिनोंसे ऐसा दिखाई पड़ता है मानो [illegible] जमा होते जाते हैं और [illegible] काढ़ और [illegible] दिखाई पड़ती [illegible] गिराने

प्रश्नका निमंत्रण

[१]

पेशावरसे कुछ आगे चलकर सरहद आ जाती है। आजकल वहां पठानोंकी बस्तियां हैं। इसी प्रदेशको २५०० वर्ष पहले अर्ध-केकेयी देश कहते थे। पहले वहां भी लोग मनहूस और अड़ियल थे। उनमें लूट-खसोट मार-काटकी बुरी आदतें अधिक पाई जाती थीं। उस समय श्वेताम्बिका नगर यहीं कहीं आसपास ही था। जो परदेशीकी मुख्य राजधानी थी। परदेशी राजा था। उसमें सब गुण नामसे बाह्य राजा होनेके पाये जाते थे। वह प्रजासे लांच खाकर भी उन्हें खुश रखनेकी चेष्टा रखता। शिकारकी कुटेव तो उसकी जन्म घुट्टीमें ही पड़ गई थी। इसके अतिरिक्त वह हरएक पशुको पकड़ कर तौल लेता था। फिर मारकर भी तौलता और लोगोंको बताता कि दोनों अवस्थाओंमें वजन एक सा ही है। यदि जीव होता तो उसके निकलनेपर कुछ तो वजन घटना था मगर ऐसा कहां तो कुछ

नहीं। इससे साफ़ जाहिर होताहै कि जीव नहीं है। कभी उसे यह ख्यालआता कि शायद मनुष्यके शरीरसे जीव निकल कर शरीर घट सकता हो। इसकी जांच करनेके लिये वह चोरोंको गला दबाकर मार डालता, फिर तौलता और लोगोंसे कहता कि मनुष्यमें भी जीव नहीं है शरीर और आत्मा एक ही बात है। यह खोज ही उसकी दिन भरकी कमाई थी। मगर उसे शरीर और जीवको अलग सिद्ध करनेवाला कोई गुरु नहीं मिलता था।

उसका एक चित्त नामका भाई भी था। क्या खूब जोड़ी मिली, राजा परदेशी और उसका प्रधान चित्त। महाराजा परदेशी चित्त प्रधानकी बातोंका ढंग देखकर खुश हो गया। वह उसीपर विश्वास रखता था। चित्तने भी सारा राज्य संभाल लिया। प्रजामें कभी अशान्ति नहीं आने देता था। राजाके आये दिनोंके गुप्त अत्याचारोंसे यद्यपि प्रजा कभी-कभी परदेशीसे असन्तुष्ट भी हो जाती थी तथापि चित्तके अनुकूल बर्तावसे अशान्तिके बादल उठकर फिर रह जाते। क्योंकि चित्त अपनी चातुरीसे उनके आंसू पोंछनेमें क्षणमात्रका भी विलम्ब न करता था। लोभान्ध परदेशी जो टैक्स लगाता चित्त उतना ही धन अपनी गिरहसे राजकोषमें भर देता, पर प्रजाके कानों तक आंच न आने देता। यही कारण था कि प्रजा चित्तको अपना आराध्य देव मानने लगी।

[२]

कालकी कराल गतिने अब एक छोटा-मोटा ग्राम रह गया है। मगर पहले तो इसे महानगर या सावत्थीके नामसे पहचानते थे।

तुम्हारे कथनके अनुसार जब वहां और धर्मी लोक बसते हैं। वे धर्ममें जब दत्तचित्त हैं अतः उनका और तुम्हारा ख्याल रखकर आपकी प्रार्थनाको स्थान दिया जाता है, और उसका पापसे उद्धार करनेके लिये किसी उचित समयपर आऊंगा ही।

[४]

चित्त अपनी सेनाके साथ स्वदेशको जानेका प्रयाण कर रहा है। रास्तेमें सफरमैना सड़क बनाती चल रही है। विषम मार्गको सम बना देती है, नदियोंके पुल बना दिये हैं। भयंकर वनोंमें छोटे-छोटे घोष बसाये गये हैं। यहां ग्वाल-बाल दोनों वक्त समायिक करते हैं, और पशुपालन करनेमें सदैव तत्पर रहते हैं। बीस-बीस मीलके अन्तरपर दो-दो चार-चार घटियां बनाई हैं। ठीक अपने नगर तक यह प्रबन्ध किया है। सब घोषों और बस्तियोंके पटवारी और नम्बरदारोंसे कह दिया है कि इस रास्तेसे महात्मा केशीश्रमण आवेंगे। उनका उपदेश सुना करना। उन्हें दूध, दही, रोटी और प्रासुक जल अवश्य प्रदान करना, इसमें आपको अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होगी। मुनिराजोंको सुख देनेसे अवश्य अविचल सुखका प्रतिफल लीलामात्रमें ही मिल जाता है। इसका याद रख, भूल न जाना

अन्तमें अपने नगरके बाहरवाले उपवनमें आकर बागवालोंको कह [illegible] कि इसमें कुछ ही समयमें [illegible] यहां एक मुनियोंके समुदाय [illegible] सब मार्ग सुगम [illegible] है [illegible] करना। उनके [illegible] और विहारके लिये रहना।

श्रोतागण अपने-अपने मनके संदेह पूछ-पूछकर निवारण कर रहे हैं। कई मुनिराज अध्ययनमें लगे हुए हैं।

राजा—इन मुनियोंने मेरा भाग क्यों रोका है?

प्रधान—ये महान आत्माएँ हैं। आत्मा और शरीरके अलग-अलग माननेवाले हैं। उपदेश बड़ा हितकर है। कहीं आपका उनसे वार्तालाप हो जाय तो आपका प्राचीन संदेह भी निकल बाहर हो।

*   *   *   *

राजाने मुनिके संगसे नास्तिकताको छोड़ दिया और श्रमणोपासक होकर अपने सात हजार गांवोंकी आमदनीके चार भाग कर दिये, चौथा भाग दानमें लगाता है। सुपात्रोंको सब कुछ दिया जाता है। नगरके चारों द्वारों पर चार सत्रागार लगाये हैं विद्यालय, चिकित्सालय, अनाथालय और उदासीनाश्रम—ये चार सदावृत खोले हैं। जिनमें मनुष्य मात्र और प्राणी मात्रका पालन लाखोंकी संख्यामें होता है। यह सब यश चित्त प्रधानको प्राप्त है। उसीने इस देशमें मुनियोंके आनेके लिये सरल मार्ग बना दिया था। जिससे एक महान अधम आत्माको नरक जाते-जाते स्वर्गकी प्राप्ति हो गई। यह अमर यश और पुण्य चित्त प्रधानके हिस्सेमें हैं।

प्रचारका निमन्त्रण बौद्ध साहित्यसे

अनाथ पिंडिक गृहपति राजगृहकके श्रेष्ठीका बहनोई था। किसी कामके लिये राजगृह आया पर राजगृहक श्रेष्ठीने बुद्ध

बुद्ध मेरा नाम लेकर बुला रहे हैं। मनमें फूला न समाय और बोला कि भन्ते, नमन करता हूं।

मुझसे नींद तो आई ?

समाधि प्राप्त ब्राह्मण सर्वदा सुखसे सोता है। जो शीतल है, दोष रहित है, काम वासनाओंमें अलिप्त है, निर्भय है, उपशान्त है अतृष्ण है वह सुखसे सोता है। यह कह आनुपूर्वी कथा कह सुनाई। इसकी समाप्तिपर अनाथपिंडिक बुद्धका उपासक होते समय बोला कि मैं बुद्ध, संघ, धर्मकी शरणमें आता हूं।

इसके बाद अनाथपिंडिकने अगले दिनके लिये बुद्धको निमंत्रित किया, महात्मा बुद्धने उसे मनसे स्वीकार कर लिया।

* * *

राजगृहक—अनाथपिंडिक !

मैंने सुना है कि आपने बुद्धको संघ समेत कलके लिये निमन्त्रित किया है।

अनाथपिंडिक—यह सत्य है।

राजगृहक तुम यहांके अतिथि हो। अतः तुम्हें खर्च देता हूं जिससे बुद्ध सहित भिक्षु संघके लिये भोजन तैयार कर सको।

अनाथपिंडिक [illegible] मेरे पास धन है। जिससे मैं सब काम कर सकूंगा

[illegible] इस समयका एक [illegible] पद था जो [illegible] और महात्मा देनेका

पूरा वचन दिया; मगर अनाथपिंडिकने उनसे भी यही कहा कि मेरे पास इतना खर्च है जिससे बुद्ध सहित संघको भोजन दे सकूंगा।

अगले दिन अनाथपिंडिकने बुद्ध सहित भिक्षु संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य, भोज्यसे सन्तर्पित करनेके पश्चात् हाथ जोड़कर यह कहा कि भगवन्! श्रावस्तीमें वर्षावास करना स्वीकार करें।

सूने घरमें गृहपति! तथागत अभिरमण (विहार) करते हैं। यह बुद्धने कहा।

अनाथपिंडिक—समझ गया सुगत!

इसने सोचा कि पहले रास्ता और पड़साल बनवाकर इन्हें पहुंचाना चाहिये। इसी प्रकार सर्व प्रथम महात्माके लिये विहार बनवाऊंगा और फिर निमन्त्रण दूंगा, यह ही ठीक होगा। और उन्होंने खुद भी कहा है कि बुद्ध विहार बिना नहीं जाते। ठीक है सुगत! मैं भी यही समझा।

अनाथपिंडिक गृहपति था, धनाढ्योंमें [illegible] प्रसिद्ध था। इसके [illegible]। [illegible] था। [illegible] था।

[illegible]

दिया। अपनी तरफसे विहार बनवाये। इसने पैंतालीस योजन तकके रास्तेमें श्रावस्ती तक एक-एक योजनपर विहार बनवा दिये। बुद्धके लिये श्रावस्ती पहुँचनेका मार्ग इस प्रकार सुगम करके फिर सावत्थी आया।—(अट्ठकथा)

अनाथपिण्डिक गृहपतिने श्रावस्ती आकर नगरके चारों ओर नजर दौड़ाई और सोचने लगा कि बुद्ध कहां निवास करेंगे। उनके निवास करने योग्य स्थान गांवसे अधिक दूर न हो, अधिक समीप भी न हो दर्शनार्थी पुरुषोंके आने-जाने योग्य भी हो तथा सुगमतासे आ सकें, इच्छुक मनुष्य हँसी-खुशीसे पहुंच सकें, दिनको भीड़ कम रहती हो, रातको कोलाहलका शब्द न पहुंचता हो आदमियोंकी गन्दी हवासे रहित हो। मनुष्योंसे एकान्त भी हो और हो ध्यानके योग्य। उसने इन गुणोंसे भूषित जेत राजकुमारका उद्यान ही देखा जिसमें ये सब गुण थे। निदान वहां जाकर जेतराजकुमारसे कहा।

आर्य्य पुत्र। मुझे आराम बनवानेके लिये उद्यान दीजिये।

आर्य्यपुत्र—क्रोड़ कमाकर भी यह अदेय है।

गृहपति मैंने आराम ले लिया।

आर्य्यपुत्र - तूने नहीं लिया। लिया या नहीं यह इन्होंने अमात्य (न्यायाध्यक्षों) से पूछा।

महामात्योंने कहा—आर्य्यपुत्र आपने मोल किया है। इसी आधारपर इसने आपका आराम ले लिया है

* * * *

(उपस्थानशाला) हमाम—कल्पित कुटियां (भण्डार) पाखाने पेशाब-घर, चंक्रमणशाला (टहलनेका स्थान), प्याऊ, जन्ताघर (स्नान-गृह) पुष्करिणी, मण्डप आदि सभी कुछ बनवाये। मगर उस विहारका नाम प्रसिद्ध किया जेतवनके नामसे। जब कि आज १०-१२) रुपये किसी अनाथाश्रमको दान करते हैं तो दर्जनों समाचार पत्रोंमें प्रकाशित करा डालते हैं, और ईंटोंका फर्श उपाश्रयमें लगाते हैं तो अपने नामका खुदा हुआ पत्थर भी लगवा देते हैं। हाय! आज धर्मवीरोंको अपने नामकी प्रसिद्धि कितनी प्रिय है? जो करोड़ोंके दानके सामने कुछ भी नहीं है।

उत्तम लड्डू पीनेमें कमाल कर आता था। यह ५०० भैंसे नित्य मौतके घाट उतार देता था। इसका सर्व सवेरे कोई नाम तक नहीं लेता था। इसका घर राजगृहसे दक्षिणकी ओर था। सौकरिक (सुलस) इसीका इकलौता लड़का था। आज इसका भाग्य-उदय हो गया है। अभी-अभी भगवान् ज्ञातृपुत्र वीर प्रभुकी वाणी रूपी अमृत पीकर आया है। इसकी ही आत्माने अन्दरसे ठीक आवाज पैदा की थी। सर्वज्ञकी आवाज इसकी आत्मामें स्वातीके मेघकी तरह मिलकर अमूल्य मोती पैदा कर गई। अब यह जातिसे भी कसाई नहीं रहा है। इसने प्रभुके पहले ही उपदेशसे श्रावकके १२ व्रत लिये हैं। भगवान्ने इसकी अमर-आत्माके साथ-साथ इसकी अपावन देहको भी शुद्ध कर दिया है। अबसे इसके देह सूत्रमें संवर रहने लगा है और पाप कर्म आनेका आस्रव जाता रहा है। आज यह 'समणोवासओ जाओ' श्रमणोपासक हो गया है, आदर्श जैन हो गया है, अनादिसे इसे यह कर्म रोग हो रहा था कि जिससे पर परिणतिमें ही इसका अभिरमण चला आ रहा था। पर जो आत्माके स्वाभाविक गुणपर पर्दा पड़ गया है, उस पर्देको हटानेके लिये जो सद्भाव (शुद्धोपयोग) प्रगट करता है, वही श्रमण कहलाता है। उसकी स्वीहनि सेवा या उपासनामें सुलस स्वयं सेवक श्रमणोपासक या स्वावलम्बी हो गया है। शरीर, कीर्ति, स्त्री, पुत्र, धन, अभ्युदय आदिकी उपासना इसकी दृष्टिमें गौण हो गई है। मुख्यतया मुनि (ज्ञान-दर्शन चरित्र) की सेवामें ही इसकी दृष्टि निष्ठा और भावना हो गई है।

'अभिगअजीवाजीवे' आत्माको सन्मुख रखकर जड़ और

तबेलेसे आई है। तबेला १००-१२५ बीघेका लम्बा-चौड़ा है। कालूर इसी कत्लखानेमें ५०० भैंसे रोज मारता है। इसके अतिरिक्त और भी पशु-पक्षियोंकी यहां प्राण-नदी बहा दी जाती है।

उनके मांस, चमड़े, खून, हड्डी, आंत, सींग, खुर, पांख, चोंच आदिके व्यवसायसे बहुत-सा धन कमाता है। पटनेमें इसका बड़ा भारी रेशमका कारखाना भी खुला हुआ है। जहां करोड़ों रेशमी कीड़ोंको मारकर हजारों मन रेशम तैयार किया जाता है तथा देशान्तरोंमें भी रेशम रंगनेवालोंने इससे खूनकी आदत बना रक्खी थी। यह उनकी मांगके अनुसार हजारों पीपे खून रेशम रंगनेके लिये भेज दिया करता था।

* * * *

चबूतरेपर बैठा-बैठा सौकरिक मन ही मन सोच-विचारमें लगा हुआ है। भविष्यकी जीवन-सामग्रियोंको चुन-चुन कर एक ओर जमा करनेमें व्यस्त है। इतने ही में जूतोंकी चुर्र मुर्रकी आहट सुनते ही उसकी विचार धारा वहीं रुक गई। उसने पीछेकी ओर मुड़कर देखा तो अपने पितारामको खड़ा देखा। उसने तुरन्त उठकर बापका शिष्टाचार किया। आज बापूके शब्दोंमें बिजलीकी तरह भयंकर कड़क और मादकता थी। उसने गर्वभरे शब्दोंमें कहा कि—

बेटे सौकरिक! तबेले जल्दी जाओ। आज २००० पीपे खून बैल गाड़ियोंमें लदवाकर गाड़ीवानोंसे सख्ती लेकर कहो कि पटने जल्द जाय। रेशमके कारखानोंमें खूनकी कई दिनोंसे मांग आई

करवे लगाकर तेरे और तेरी रोहिणीके लिये यह भवन बनवाया था जिसमें तुझे स्वर्गसे अधिक सुख मिलता। परन्तु तू तो भाग्यहीन है। जैन बनने चला है। क्या जैन बनकर इस घरमें भी रहनेका हौंसला रखता है ? घरसे निकालते समय पाई तक न दूंगा। लंगोटी लगवा कर सब कपड़े भी उतरवा लूंगा। तब श्रमणोपासक बननेका मजा आयगा, मानजा-मानजा, क्यों जलेपर नमक छिड़क रहा है।

* * * *

मौक्तिक—प्यारी रोहिणी! क्या तुम मेरे कथनानुसार श्रावक धर्मके १२ व्रत ले आई हो।

रोहिणी नतमस्तक होकर बोली कि—नाथ! इस दासीको आपकी आज्ञा मिलनेपर क्या देर थी। सीधी भगवान् महावीरके समवसरणमें श्राविकोचित व्रत ले आई हूं।

मौक्तिक—रोहिणी! तू धन्य है। जैन समाजको तुझ-सी आदर्श महिलाकी बड़ी ही आवश्यकता थी जिसमें यह निःसन्देह कहता हूं कि मेरे भाग्य आज जागृत हो गये हैं। पर अभी ..."

रोहिणी—(बात काट कर) क्या हमारे शुद्ध होनेकी बात पिताजी भी जान गए हैं? मैं उनके स्वभावको जानती हूं। वे अवश्य ही [illegible]

मौक्तिक [illegible] आज्ञा [illegible] है कि आज [illegible] समझते है कि [illegible] पुत्रवर [illegible] स्थिर

ही का न! पर हां, एक बात और याद आती है, वह यह कि इस समय यही चिन्ता है कि सांझकी सामायिक कहां बैठकर करेंगे।

रोहिणी—इस तबेलेके पीछे कुछ दूर दक्षिणकी ओर एक ऊंचे टीलेवाली जो जमीन दीख पड़ती है उसपर प्रधान अभयकुमार एक 'अभयाश्रम' बनवानेवाले हैं। वहीं हम भी अपनी एक झोंपड़ी बांधकर उसमें रहा करेंगे। यह तो आप जानते ही हैं कि अब हम लकड़ियां बेचकर ही अपना निर्वाह किया करेंगे।

सौकरिक—और मुनियोंको आहार दान क्योंकर दे सकेंगे? मात्र एक लंगोटी रखकर सब भूषण भी तो लौटा देने होंगे।

रोहिणी—प्राण प्यारे! चिन्ताकी कौन-सी बात है! मैं अभी-अभी सुनकर आई हूं कि भगवान्‌का सच्चा साधु तो रूखा-सूखा आहार लेता है। वहीं मुनियोंको भी पड़गाह कर देंगे। उनकी नवधा भक्ति करेंगे। उनके लिये हलवे मांडेकी जरूरत नहीं है। उन्हींकी तरह हम भी अपना सादा जीवन बनायेंगे। परन्तु उस अभव्यात्माकी फूटी कौड़ी भी न छूवेंगे।

सौकरिक—और तुझे फिर कभी गहने बनवानेकी इच्छा तो न होगी?

रोहिणी—आज मैंने तीन रत्न मुद्राएं और १२ अमूल्य गहने जब पहन लिये हैं, तब मैं आजसे सर्वथा सन्तुष्ट हो गई हूं। अबसे इस एक जैन महिलाके सत्य और शील ही गहने रहेंगे, चांदी-सोनेको बेड़ियां नहीं।

* * * *

मंत्री अभयकुमारका "अभयाश्रम" बनकर तैयार हो गया है। इसमें सौकरिकको जैन मिशनरीका पद दिया गया है। इसके प्रभावशाली व्याख्यान कसाई पाड़ेमें नित्य होते हैं। जैन सिद्धान्त पर खूब चर्चा रहती है। इसके मनोहर और आकर्षक प्रवचनोंसे सब कसाई लोगोंके विचार बदल गये हैं। कत्लखाने गोशालाके रूपमें हो गये हैं। इन सबको भगवानका श्रावक बनाया गया है। सौकरिककी जातिके सब लोग व्यापारी बन गये हैं। कुछ श्रमजीवी होनेके लिये तैयार हैं पर कसाईका काम किसीको स्वप्नमें भी इष्ट नहीं। मात्र एक काल्सूरको ही वहां कसाई कहा जाता है। बाकीके लोग तो साम्यवाद विधायक जैनत्वको पा चुके हैं।

प्रातः सायं इस आश्रममें २०-२५ हजार आदमियोंकी भारी भीड़ लगती है। उस समय शान्तिका साम्राज्य छाया रहता है। सब लोग मौन होकर सामायिकमें स्थित हो जाते हैं। उस समय इनकी दृष्टियां नासिकाके अग्रभागपर जम जाती हैं, कायोत्सर्गमें धर्मध्यानका चिन्तवन किया जाता है। इन सबकी सामायिक निर्दोष होती है। अब ये सब अणुव्रती जैन हैं। जो सौकरिककी दयालु प्रकृतिसे शुद्ध किये गये हैं। उस समयका यह व्यक्तिगत जैन बननेका मार्ग खुला हुआ था, जातिगत नहीं। उस समय जातिका कोई मूल्य न था। जेमनवारके अन्दर सबको सम्मिलित किया जाता था रोटी-बेटी व्यवहारमें किसी नवीन जैनको पुराने जैन वंचित नहीं रखते थे। क्योंकि उस समय धर्म काल था, सम-

दर्शित्व जीवन था। सौकरिकके अथक परिश्रमका फल भी यही निकला। इसीने कसाई जातिमें सुधार किया। २५॥ देशके जैनोंमें इसका नाम बड़े चाव और आदरसे लिया जाता।

मगर यह तो अब भी लकड़ियां बेचकर सादगीसे अपना उदर पालन करता है। इसीमें इसे पूर्ण सन्तोष है। इसके त्यागमें बड़ी ही मौलिकता है। प्रधान स्वयं इसकी सब प्रकारसे रक्षा-सेवा करना चाहता है। परन्तु वह परावलम्बी होना पाप समझता है। महामात्य आश्रममें आकर इसीके पास नित्य सामायिक करता है। इससे धर्म गोष्ठी करके ही अपनेको धन्य मानता है। इसीकी एक शाखा 'उदासीन' आश्रम है, जिसमें वयोवृद्ध पुरुषोंकी सेवा होती है। मगध और अंगके ३०० योजनके वर्गीकरण क्षेत्रमें इस प्रकारकी छोटी-मोटी हजारों संस्थाएँ और उनकी उपशाखाएँ बनाई गई। बेऔलादवाले अपना इन्हीं संस्थाओंमें सर्वस्व दान करते थे। जैन गृहस्थ अपनी कमाईका चौथा भाग इन्हीं संस्थाओंको देते थे। उस समयकी जनताको सब प्रकारकी सहायता दी जाती थी। जिससे संसारमें बेरोजगारीको उस समय कोई भी नहीं जानता था। सौकरिक नित्य प्रति इन हजारों वृद्ध पुरुषोंकी सेवामें तन्मय रहकर सबको मानव धर्मका पाठ पढ़ाता रहता था।

इधर रोहिणीका अनाथ बालिकाओं और वृद्धाओंकी सेवा करनेमें ही सब समय व्यतीत होता है इसने अपनी जातिकी हजारों बहनें सुधार अपने दृढ़ कराई हैं वे भी सब परिपक्व

श्राविकाएँ हैं, शीलवती हैं, अंग शास्त्रोंकी स्वाध्याय करती हैं। देशके हितका ध्यान रखती हैं। जहां देशको अंगुली जैसी छोटी वस्तुकी आवश्यकता होती है वहां ये अपने तन-धनको भी न्यौछावर करनेके लिये सदैव तैयार रहती हैं। धर्म और देश-सेवाके लिये ही अपना जीवन समझती हैं। इस प्रकार यह चौथे आरेका अभयाश्रम अनेक देश-देशान्तरोंमें अद्वितीय गिना जाने लगा था।

* * *

आज फाल्गुनका १७ वां है, उसके मरनेकी घटनाको सुनकर रोमांच हो उठते हैं। क्या एक मच्छीका कांटा होता है, बस वही हलकमें उलझ गया था। तबसे बिचारा सूखकर कांटा हो गया था। वर्षों बाद तड़पनसे एक दिन उसकी बिल्कुल जान निकल गई, अब उसके कत्लखानेमें हड़ताल पड़ गई है। १५ वें दिन कुटुम्बके ५१ आदमी मिलकर अभयाश्रममें आये। ६-७ घंटे तक वाद-विवाद करते-करते धरनासा मांड बैठे। सौकरिकसे बल-पूर्वक कहते हैं कि बापकी जगहपर बिन्दी मत लगाओ। वर्ना आज मगधमेंसे कसाई कर्म उठ गया समझो। परन्तु पति-पत्नीका जोड़ा सुमेरुकी तरह अचल था।

एक प्रमुख—सौकरिक! बापका व्यवसाय करनेमें क्या डर है?

सौकरिक—मुझे वीर परमात्माकी दयासे कभी भय नहीं लग सकता मात्र एक पाप कर्मका भय रखता हूं। जिसका विपाक सबको स्वयं मारकर भी भुगतना पड़ता है। उसका उदय आते समय कोई भी मित्र उसका भाग नहीं बटा सकता।

प्रमुख—हम यहां सब मिलकर जितने मनुष्य आये हैं पापके उतने ही हिस्से कर लेंगे। लो बस अब तो चलो। इससे बढ़कर और क्या दिलासा दिया जा सकता है। बस चलो देर मत करो।

सौकरिक—भद्रे रोहिणी ! जरा दुकान तक चलना होगा।

रोहिणी—पधारिये पतिदेव !

* * *

आज दुकानके चबूतरे और सड़कपर भारी भीड़ जमी खड़ी है। जो भी सुनता है भागा चला आता है। यह खबर बिजलीकी तरह राजगृह भरमें फैल गई है। सबको सुनकर यही अचरज होता है कि—क्या आज वह सौकरिक नहीं है जिसने अब तक हजारों हत्यारोंकी कई पीढ़ियोंका पाप धोया है। मगर न मालूम आज यह अपने बापकी दुकानपर क्या करने आया है।

आज सौकरिकने २८ वर्षके बाद अपने बापकी दुकानमें पैर रक्खा है। आलमारीसे पैनी छुरी निकालकर जनताके देखते-देखते अपनी कोमल जांघमें एक जोरका हाथ मारा कि छुरी ४ इञ्च जंघामें थी तिसपर वह था एकदम मूर्छित।

रोहिणीने सहसा गुलाब जल छिड़ककर स्वामीकी मूर्च्छा दूर की।

सौकरिक होशमें आकर बोला कि बन्धुओ ! इसमें भारी दर्द हो रहा है जिसे मैं ही जानता हूं कितना असह्य है [illegible] आने-वाली है। अब शीघ्र ही इस दुःखके [illegible] भाग बनाकर सब बांट

लो और एक भाग मेरे पास रहने दो जिससे मुझे आरोग्य लाभ हो।

सब कसाई – भाई! दुःखके घटानेकी किसीमें शक्ति नहीं। इसके हिस्से नहीं बनाये जा सकते। इसे तो वही भोगता है जिसके दुर्मोपर आन बनती है। हम सब इस समय बेबस हैं।

सौकरिक—ऐ मेरे बाल मित्रों! जब इस साधारणसे दुःखके घटानेमें तुम सब असमर्थ हो तब पाप और उसके दुःख फलके भाग क्योंकर ले सकोगे। अतः अब भी समझो, सचेत होकर पापके बिल्से निकलो। मुझे तुम्हारी अज्ञान दशापर बड़ी दया आती है। अतः चलो, भगवान ज्ञातृपुत्र-महावीर स्वामीकी शरणमें चलो जिससे तुम्हारे दोनों लोक सुधर सकते हैं।

यह सब देख-सुनकर दर्शकगण अवाक रह गये। सब मन्त्रवत कीलितसे थे, और बार-बार उनके मुखसे यही निकलता था कि दयालु श्रमणोपासक सौकरिककी जय! ज्ञातपुत्र भगवान वीर परमात्माकी जय!

*　　　*　　　*

पूर्णक सेठ अपने नौमहलेसे जनमेदिनीमें इस दृश्यको दूरसे देखकर चकित हो गया। मन ही मन उसकी बड़ाई करने लगा और विचार आया कि जिस कत्लखानेको राजसत्ता द्वारा भी नहीं रोका जा सकता था उसी पापके अड्डे को महावीरके जैन मिशनमें भर्ती होकर उस कसाईके पुत्रने किस प्रकार रोक दिया। कितनी वजनदार युक्ति है जो अनपढ़ और जड़ मानवोंके मनको भी हिंसासे

रोक दिया। अहिंसाका पाठ पढ़ाकर अन्तस्तलपर किस गजबकी छाप डाली है। जिसने इसकी आत्मामें ऐसे उच्च कोटिके भाव भरे हैं वह कोई आदर्श महात्मा है। ईश्वरका नवीन अवतार ऐसी ही आत्मा होती है। इतनेमें 'मज्जक' सेवकने आकर कहा कि—देव! आज ज्ञातपुत्र महावीरके श्रमणोपासकोंका बोलबाला है। जैन समाजकी संख्या त्रैवर्णिकोंके अतिरिक्त अछूतोंमें बड़े जोरोंसे बढ़ती आ रही है। अब तक बड़े-बड़े राजपुत्र ही इस धर्ममें दीक्षित होते थे। परन्तु अब तो छोटी जातिके लोक भी आदर्श मनुष्य बनते जा रहे हैं। आज मैं भी सौकरिकके आदर्श जीवनपर मस्त होकर उसीसे पांच अणुव्रत रूप दीक्षा लेकर अभी वहींसे आ रहा हूं। जैन धर्म सबके लिये धर्मद्वार खोल रहा है। सबको सहयोगी बनाता है। अभेद रूपसे सबको अपनाता है। यह प्राणीमात्रका हित-चिन्तक है।

पूर्णक सेठ—मज्जक! इस समय ज्ञातृपुत्र महावीर भगवान किस स्थानपर विराजमान होंगे?

मज्जक—मालिक! इस समय गुणशीलक उद्यानमें एक भूतके मन्दिरके सामने एक विशालकाय दृढ़ आसनपर बैठे हैं, और सुन्दर स्याद्वाद शैलीका उपदेश करते हैं। मेरा भाई पन्नायक अभी-अभी उनसे जाल बुननेका व्यापार छोड़कर आया है। ये देखो जालके टुकड़ोंका पुलिन्दा मेरे पास मौजूद है। जो उसीने मुझे विश्वास दिलानेके लिये भिजवाया है। यह उसके त्यागका आदर्श परिचय कितना मौलिक है।

पूर्णक सेठ— वे वहां भूतालयके सामने क्यों ठहरे हैं ?

मलक—अन्न ! वे वहां इसलिये ठहरते हैं कि—"बहुसंख्यक लोगोंकी यह मान्यता है कि हम यक्षकी पूजा-अर्चना करते हैं, और वह हमें धन, जन, पुत्र, स्त्री आदिका सुख देता है, सब अनुकूलताएं उसीके अधीन हैं। समृद्धिका मिलना उसीकी आसीस और पूजाका फल है। इस प्रकारके उल्टे विचारोंमें लोग अनादि कालसे भूलते-भटकते आ रहे हैं। इसी कारण भगवानने उसी यक्षालयके सामने अपनी अशोक छायामें सबको अविरल शांति और विश्राम दिया है, और यक्षके जड़ पूजक पक्षपातियोंपर शिक्षामृतकी वर्षाका आरम्भ कर दिया है। इसीसे मगधके करोड़ों मनुष्योंके विचारमें परिवर्तन आ गया है। उन्हें अब यह प्रतीत होने लगा है कि हम अपने ही कर्मानुसार सुखी और दुखी होते हैं। यक्ष बिचारा क्या किसीके भाग्यमें घुस निकलेगा कभी नहीं। इसीसे अब वहां ईन मीन साढ़े तीन पुजारी रह गये हैं। जहां मनुष्योंका गमन-आगमन अधिक होता है प्रभु वहां ही ठहरते हैं। आजकलकी गन्दी गलियोंके उपाश्रयोंकी तरह उनके लिये बन्द मकानकी आवश्यकता न थी। भगवान् वहां इसलिये भी ठहरते हैं कि किसी तरह लोगोंको मानव धर्मकी शिक्षा मिले, और उनके द्वारा मिले असंख्य प्राणियोंको अभयका . . . । अतः सेठजी ! आप भी वहां जाकर उनका दर्शन लाभ लेकर पवित्र उपदेश सुननेके भाग्यशाली बनें।

* * * *

पूर्णक गुणशील उद्यानको देखकर रथसे नीचे उतर गया है।

(४) प्रभुके सभा-मंडपमें आज सिंह-बकरी भी एक घाट पानी पीते हैं। कोई किसीका शत्रु नहीं रहता, इसीसे वीतरागताके अनुकरण करनेकी प्रबल उत्कंठा जागृत हो जाती है। मूषक और मयूर जीव तक भी आपसका जातीय द्वेष यहां आकर भूल देते हैं। इन पशुओंने भी हिंसाभाव छोड़ दिया है। निर्बलपर बलवानका द्वेषभाव भुलाकर साम्यभाव पैदा कर दिया है। यह सब इस सिद्ध पुरुषका ही प्रचंड प्रभाव और माहात्म्य है। तब मनुष्योंको तो उच्च कोटिका प्रेम पाठ सीखना चाहिये। यही भाव लेकर पूर्णकने भी अपना कटार खोलकर चार घोड़ियाके रथमें फेंक दिया। इसी तरह जेबसे चाकू और हाथकी कैंची सेंत भी उसी जगह रख दिये।

(५) यदि ग्राहक मेरे पास कोई क्रय वस्तु खरीदने आता है तब मैं उसे ऊंची कक्षाकी बहुमूल्य वस्तु दिखाता हूं, न कि घटिया, तब इसी भांति मैं भी भगवान् महावीर प्रभुसे धर्म सुनने जा रहा हूं। तब क्या वे भी मुझे उच्च कोटिका धर्म न कह सुनायेंगे ? और मुझे भी कुछ उसपर मनन करने और दृढ़ विश्वासके लिये तैयार होकर जाना चाहिये। यदि अभीसे अभ्यास करूंगा तो चरित्रका पार ले सकूँगा। यही विचार कर बोलनेमें वायु द्वारा होनेवाले हिंसा दोषको रोकनेके लिये मुखपर एक वस्त्रका पर्दा कर लिया, और विनयके साथ नतमस्तक होकर पांचों अंग झुका दिये, तथा हर्ष और उत्साहसे भरपूर होकर वीतरागकी सेवामें उपस्थित हो गया।

* * * *

प्रभुके दरबारमें उस समय मनुष्योंके अतिरिक्त पशु और

पक्षीगण भी आशासे अधिक संख्यामें उपस्थित होते थे। जिसमें गाय, बकरी, सिंह, चीता, खरगोश, स्याहगोश, कुत्ता, बिल्ली, भालू, बन्दर, व्याघ्र, हंस, मोर, सांप, चील, चिड़िया आदि अनेक प्राणियोंसे दरबारका एक भाग खचाखच भरा हुआ था। तीन घण्टे तक साम्यवाद और स्याद्वादपर व्याख्यान हुआ। धर्म, प्रेम, जीवनका उद्देश, ईश्वर, कर्म, सृष्टि आदि सब ही विषयोंकी व्याख्या की गई। इसके अनन्तर सर्वप्रथम वन-जन्तुओंने अनुक्रमसे इस प्रकार त्याग और प्रतिज्ञा लेना आरंभ किया।

बकरी—प्रभो! मैं दांतोंसे छानकर पानी पिया करूंगी, और पक्षके अन्तिम दिन सूखा घास खाया करूंगी। पर उस दिनके लिये घास सुखाकर खानेका विचार सब न करूंगी।

कई पक्षीगण—भगवन! हम सब रात्रिभोजनका त्याग करते हैं, इसके अतिरिक्त रातका विचरना भी आजसे छोड़ते हैं।

गाय—परमात्मन! मैं सूखा घास पका खाकर मनुष्योंको दूध दिया करूंगी। और मर जानेपर चमड़ा, हड्डी, सींग आदि और अपने होश-हवास दुरुस्त रहते हुए कभी म्लान भी न करूंगी।

बकरी—नाथ! हम सब मिलकर प्रेम प्यारसे रहा करेंगे। कभी लड़ाई न करेंगे और मनुष्यों [illegible] अपनी जान [illegible]

[illegible]

गाय—तब क्या इतने दिन उपवास ही करते रहोगे? अच्छा मैं अपना दूध पिला दिया करूंगी। पर मांस भक्षण न करना, इसकी तो हड़ताल बराबर जारी रखना।

सिंह—जगदम्बे! यह भी तो खूनसे ही बनता है। अतः उसे भी न पीऊंगा। इसके अतिरिक्त भूखसे मर जाना अच्छा है परन्तु अपने बछड़े भाइयोंका हक छीनना महापातक है। गरीबकी हाय बुरी होती है और वह सिंह जैसोंके लिये भी असह्य है।

सर्प—जगदुद्धारक! हमने पहले जन्ममें क्रोध अधिक किया था। संघमें कलह अधिक लम्बा बढ़ाया था, जिससे हमको लम्बकाय विषकी रस्सी-सी बनकर छातीके बल चलनेका प्राकृतिक दण्ड मिला है। तथापि हमसे हर किसीको भय न लग पावे, अतः संवत्सरीसे वीर जयन्ती तक हम लोग पृथ्वीमें ही छुप रहा करेंगे।

बिच्छू—दयालु पुरुष! सर्दियोंमें मैं भी बाहर न निकलूंगा।

कुत्ता—वर्धमान! मुझसे भय खाकर जो जमीनपर बैठ जायगा, उसे कभी न काटूंगा। किसीका नमक खाकर उसे हराम भी न करूंगा।

[illegible] जिससे इस [illegible] है। [illegible] विश्वासमें [illegible] जिससे तुम्हारा [illegible]

हे देवज्ञ ! मैंने अपनी युवावस्थामें अनेक लड़ाइयें लड़ीं अब तक यही हाल है, इस बुढ़ापेमें भी बड़े-बड़े जवान मुझसे लोहा नहीं ले सकते ! किसी भी श्रमजनक कार्यसे आजतक कभी थकान न चढ़ी, पर मेरे अन्तर्यामिन ! यह मैं सच कहता हूं कि आज तो मुनिवन्दन करते-करते थक गया। क्या उठ-बैठ करनेकी वन्दना पर इसीसे कस बलसे निकल गये। आजसे मैं यह मान्यता स्वीकार करता हूं कि मनुष्य धर्म करते समय थकनेका बहाना बना लेता है; किन्तु पाप करते कभी नहीं थकता।

भगवान्—श्रेणिक ! जब तू धर्मसे अपरिचित था तब एक दिन किसी वनमें एक हिरणीपर बाण चलाया था, और बाण इतने जोरसे लगा कि उसके पेटसे पार होकर किसी वृक्षमें जा चुभा। यह देख तूने उछल-उछलकर अपने इस आखेट कर्मकी प्रशंसा की थी। जिससे तेरे भावोंमें इतनी पाप कालिमा आ जमी कि तेरी आत्मामें सातवीं नरक जैसे दल बन्ध गये थे, और वे आज वन्दना करते समय शुभ भाव आनेपर एकदम नष्ट हो गये हैं। आज ही तूने सच्ची वीरता दिखाई है। आज आत्माने अपने बल-वीर्य-पुरुषार्थ और पराक्रमकी सच्ची स्फुरणा की है। जिससे थकान मालूम होती है आज तू पापके उत्कृष्ट अस्तित्व भावको मात दे चुका है। आज तू नरक जितने पाप छूट गये हैं, अब तो मात्र एक नरक जितने ही रह गये हैं यह नया हार तुझको मुबारिक होगी और आज तूने सच्ची जय पाई है चिन्ताकी बात नहीं है श्रेणिक

पहर दिन चढ़े तक हिलना भी नहीं है बोलना तो दरकिनार रहा यह उस समय तक आंख उठाकर भी न देखेगा। अतः क्षमा कीजिये ! आपका सन्देश एक बजे तक अवश्य पहुंचा दूंगा।

श्रेणिक—भाई ! हमें तो इससे एक सामायिक मोल लेना था! जिसकी अब ही बात-चीत हो जाती तो ठीक था।

प्रातिवेशिमक—(स्वगत) हम कर और कुछ सोचकर (प्रगट) हे राजन् ! आपकी बात सुनकर प्रत्येक मनुष्यको आश्चर्य हो सकता है। कारण प्रथम तो सामायिक जैसी आन्तर वस्तु कोई ऐसा वैसा खिलौना नहीं है, जो बाजार गये और खरीद लाये। दूसरे सामायिक कोई छोटे-मोटे मूल्यकी वस्तु नहीं जो १००) २००) रुपया ले-देकर जेबके हवाले कर दी जा सके। तीसरे मुझे यह भी आशा नहीं पड़ती कि पूनिया अपनी सामायिक बेचनेपर राजी हो जाय।

श्रेणिकराज—क्या कहा, राजी न होगा ! नगद्नारायण वह वस्तु है जिसे देखकर देवताओंके मुंहसे भी लार टपक पड़ती है जिसमें इस बनियेंकी तो क्या असल है। इसके अतिरिक्त इसकी इच्छा हो तो लागतसे दुगुने-चौगुने सौगुने-हजार गुने तक दाम ले ले। उधारका काम नहीं, हम सब नकद चुका देंगे। चाहे तो अभी कोषसे जाकर चेक भुना लावे। श्रेणिक वह राजा नहीं है जिसके पीछे वर्षों तक तगादेवाले गलियोंकी खाक छाना करें और उसकी कल ही पूरी न हो।

प्रातिवेशिमक—राजन् ! अपराध क्षमा हो, पर शायद आप मेरे

अभिप्रायको समझे नहीं, अतः मैं सारी घटना अथसे अंततक सुनाता हूं। वास्तवमें बात यह है कि अबसे १२ वर्ष पहले यह पूनिया सेठ पूर्णकके नामसे प्रसिद्ध था। एक दिन यह वीर प्रभुके पास पहली ही बार गया था, पहले-पहल उपदेश सुनकर इसने श्रावकके १२ व्रत स्वीकार कर लिये। उस समय यह अरब-खरब धनका स्वामी और इभ्य सेठ था। एक दिन अपने कुटुम्बको एकत्र करके यह कहा कि—जिसको जितना दाय भाग पहुंचता है वह उस दायादका सौ गुणा ले ले। यह कह उसने सबको इसी रीतिसे उनका हक दे दिया। सबको आशासे अधिक भाग बांट दिया। तथा सबको अलग-अलग कर दिया। वे सब अब भी करोड़ोंपर गद्दी बिछाये बैठे हैं, सबकी सुख चैनसे कटती है।

बटवारेसे बच रहे धनसे राजगृहके पूर्व द्वारपर एक अनेकान्त-वाद विद्यालय खोला। जिसमें हजारों विद्यार्थियोंकी पाठ्य व्यवस्था की गई है। जिसका ध्रुव कोष कई करोड़ है।

पश्चिममें नगर द्वारसे कुछ दूर भिषगालय स्थापन किया है। जहां लाखों मनुष्य और पशु चिकित्सा द्वारा आरोग्य लाभ पाते हैं।

और उत्तरके नगर द्वारकी ओर इसने 'अनाथ-रक्षक-गृह' बनवाया। जिसमें मनुष्य और पशुओंको आराममे रक्खा जाता है। अनाथोंके लिये खाने-पीने पढ़ने तककी उत्तम व्यवस्था है। वहां अनाथोंका सुखसे भरण-पोषण होता है।

तथा दक्षिणकी ओर 'उदासीनाश्रम' भी है जिसमें पकी उमरके

स्त्री-पुरुष अलग-अलग रक्खे जाते हैं। वहांपर वे अपने बुढ़ापेके जीवनको धर्म और सुख शान्तिसे बिताते हैं। जितनी सेवा उनकी घरपर सन्तान नहीं करती होगी उतनी वहांपर होती है। नगरके मध्य भागके चौक बाजारमें इसका एक महाकाय आर्हत पुस्तकालय है। जहां जनताको आगम-शास्त्र स्वाध्याय करनेका अवसर संसार भरकी भाषाओंमें मिलता है, और व्यावहारिक शिक्षाके लिये भी लाखों पुस्तकें हैं।

यहींपर ग्रामीण बन्धुओंके सुभीतेके लिये हजारों चलते-फिरते पुस्तकालयोंका भी सुन्दर प्रबन्ध किया गया है। इसकी सब संस्थाओंका ट्रस्टी महामात्य अभयराजकुमार है।

इसपर भी एक दिन इसने विवेकसे काम लेकर विचारा कि मगध, अंग, बंग और कलिंगमें मैंने किसीका कोई ऋणी नहीं छोड़ा है। सबको अऋण किया, दान भी किया, जनताके आरामकी संस्थाएं भी बना दीं, तब भी बहुत-सा धन बच गया है। इसका निबेड़ा ही नहीं आता। यह लक्ष्मी फिर भी बन्दरीके बच्चेकी तरह चिपटी ही रहती है, मेरा पीछा ही नहीं छोड़ती। उसने एक दिन सिर्फ सात सिक्के रखकर बचा-खुचा सब धन कूड़े-करकटकी तरह बाजारमें फेंक दिया, और फूसकी झोपड़ी बांधकर उसमें वह [illegible] ही रहता है। सात सिक्के ही इसकी निजी पूंजी है। इससे अधिक वह फूटी कौड़ी भी [illegible] नहीं है। रुई और पूनियोंका व्यवसाय करके अपना उदर निर्वाह करता है। [illegible] छोड़कर इसकी कोई पोशाक नहीं

र यहां इस विषयकी चातुर्यपूर्ण चर्चा छिड़ी कि वास्तविक ब्राह्मण्य किसमें है।

गौतमबुद्ध सोणदण्डके मनका अभिप्राय समझकर यों बोले—

सोणदण्ड! यह कौन-सी वस्तु है कि जिसके होनेके कारण ब्राह्मण यह कहनेका गर्व करता है कि मैं ब्राह्मण हूं।

सोणदण्ड—गौतम! पांच बातें ही तो ब्राह्मण 'मैं ब्राह्मण हूं' यह यथार्थरीत्या कह सकता है।

(१) प्रथम वह माता-पिताके उभयवंश विशुद्धमें उत्पन्न हुआ है।

(२) तीनों वेदोंमें और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य शास्त्रोंमें प्रवीण है।

(३) सुन्दर और गौर वर्ण है, उसका दर्शन देखनेपर सबको प्रिय लगता है, और भाविकात्मा भी है।

(४) शीलवान—चरित्रवान भी परिपूर्ण है।

(५) प्रज्ञावान—बुद्धिमान है।

गौतमबुद्धने पूछा कि सोणदण्ड! जन्म, कुल, रूप, शील और प्रज्ञा इन पांचोंमेंसे यदि एक भी कम हो तो क्या [illegible]?

सोणदण्ड—हां हां क्यों नहीं, रूप न हो तो कोई हानि नहीं, [illegible] चार हों तो भी [illegible] है।

बुद्ध—यदि इन चारोंमेंसे किसीको एक कम [illegible]

सोणदण्ड—[illegible]

बुद्ध—[illegible]

जानी चाहिये। इसके अतिरिक्त बुद्धदेव यह भी निर्णय करके कहते हैं कि दोनों हाथ इकट्ठे किये बिना धुल नहीं सकते तथापि शील (Character) मनुष्यका दाहिना हाथ और प्रज्ञा (Wisdom) बांया हाथ है।

*　　*　　*　　*

जो इस लोकमें शुद्ध अग्निके समान पापसे रहित होनेके कारण पूजित है विद्वान् उसे ही ब्राह्मण मानते हैं। जो स्वजनादिमें आसक्त नहीं है और संयमशील होकर कष्टमें शोक नहीं करता तथा महापुरुषोंके वचनामृतोंमें आनन्द मानता है वही ब्राह्मण है। जिस प्रकार शुद्ध सुवर्ण मैल रहित होता है उसी प्रकार मल और पापसे रहित तथा राग-द्वेष और मत्सरसे पर रहनेवाला ब्राह्मण होता है। जिस सदाचारी, तपस्वी, दमितेन्द्रियने अपने मांस और लहूको सुखा दिया हो, कषायोंको जीतकर जो शान्ति पाते हैं मैं उसे ब्राह्मण समझता हूं।

जान बचानेके लिये कहां छिपें ? हिम्मत बांधकर अबकी
(तिर्छी चालसे शहरकी तरफ उड़ चला है। खाई, कोट, किला,
ा-बगीचा सबको लांघता चला गया, पर इसे अपनी नन्हीं-सी
न बचानेको कहीं जगह सूझ न पड़ी। हाय ! इसे अब कहीं प्राणके
ये स्थान नहीं। एक तरफ दम फूल रहा है, श्वासपर श्वास आ
: हैं। कलेजेकी धड़कन जोरोंपर है। दूसरी ओर शत्रु पंजा
ाये सन्निकट आनेमें दत्तचेष्ट है। कहां जाय किसके पास जाकर
याद करे। सबका पालक राजा होता है, वही सबका न्याय अपने
चे आसनपर बैठकर करता है। इसीसे यह शरीरधारी न्याया-
ार होता है जिसकी सभामें सबको दाद मिलती है। दीनबन्धु वही
, उसीके पास चल, तेरा वही सच्चा मित्र है—यही आस बांधकर
ाजसभाकी ओर मुड़ा। पर बाज ! वह तो बहुत निकट आ लगा
, पकड़ा ही चाहता है। अबका वार खाली गया, इस चक्करदार गतिसे
ानका पलड़ा भारी हो गया है। यह लो, दम टूट ही गया और
ाकाशसे झम्पा लेकर पृथ्वीकी ओर गिरा कि एक क्षणमें
अपनेको किसीकी सुकुमार गोदीमें पाया, जिसके हाथोंका स्पर्श
ता रहा है कि अब यहां किसका डर है ?

* * * *

ब्याध—प्रजापालककी जय हो ! राजन ! भूखा हूं, मेरा
शिकारी बाज़ भी भूखा है, यही एक शिकार ४ घण्टेमें कठिनाईमें
हाथ लगा है। नाथ ! प्रदान कर दीजिये, लेकर अभी चला
जाऊंगा।

है। जान बचानेके लिये कहां छिपें? हिम्मत बांधकर अबकी बार तिर्छी चालसे शहरकी तरफ उड़ चला है। खाई, कोट, किला, बाग-बगीचा सबको लांघता चला गया, पर इसे अपनी नन्हीं-सी जान बचानेको कहीं जगह सूझ न पड़ी। हाय! इसे अब कहीं त्राणके लिये स्थान नहीं। एक तरफ दम फूल रहा है, श्वासपर श्वास आ रहे हैं। कलेजेकी धड़कन जोरोंपर है। दूसरी ओर शत्रु पंजा फैलाये सन्निकट आनेमें दत्तचेष्ट है। कहां जाय किसके पास जाकर फर्याद करे। सबका पालक राजा होता है, यही सबका न्याय अपने ऊंचे आसनपर बैठकर करता है। इसीसे यह शरीरधारी न्यायावतार होता है जिसकी सभामें सबको दाद मिलती है। दीनबन्धु यही है, उसीके पास चल, तेरा वही सचा मित्र है—यही आस बांधकर राजसभाकी ओर मुड़ा। पर बाज! वह तो बहुत निकट आ लगा है, पकड़ा ही चाहता है। अबका वार खाली गया, इस चक्करदार गतिसे जानका पलड़ा भारी हो गया है। यह लो, दम टूट ही गया और आकाशसे झम्पा लेकर पृथ्वीकी ओर गिरा कि एक आनमें अपनेको किसीकी सुकुमार गोदीमें पाया, जिसके हाथोंका स्पर्श बता रहा है कि अब यहां किसका डर है?

* * * *

व्याध—प्रजापालककी जय हो! राजन! भूखा हूं, मेरा शिकारी बाज भी भूखा है, यही एक शिकार ४ घण्टेमें कठिनाईसे हाथ लगा है। नाथ! प्रदान कर दीजिये, लेकर अभी चला जाऊंगा।

महाराजा मेघरथ—भाई! रोटी, दाल, चावल, मुंगड़े, हलवा, सुहाली, मट्ठा, मिठाई, लड्डू, पेड़े आदि सभी मँगाए देता हूं। खाकर तृप्त हो जाओगे। पर इसे न मांगो, यह मेरी शरणमें है। यह सारे राज्यसे भी अदेय है।

व्याध—न्यायशील सरकारकी दुहाई है। मुझे बचपनसे मांस ही प्रिय है। इसे न छोड़ सकूंगा। मैं आपकी आज्ञा पालन करनेके लिये विवश हूं, पर यह शिकरा मांसके अतिरिक्त और कुछ नहीं खाता। सरकार हमसे भूखोंको यही सदाव्रत दे दीजिये। इस दरबारमें न्याय होता है। आपने ही यहां धर्मके कांटेमें न्याय और सत्यको तौलकर बताया है। कबूतरको कृपया अर्पण कीजिये, आपकी आत्माको अनन्त पुण्य होगा। देर हो रही है, भूख कलेजा काट रही है। आह! बड़ी भूख लगी है (यह कहकर एक ओर गिर पड़ता है)।

महाराजा मेघरथ—(कबूतरकी ओर देखकर) अहह! बेचारा हथेलीपर रक्खे हुए जुगनूकी तरह किस प्रकार कांप रहा है। कलेजेको तो देखो, वायुमें प्रेरित ध्वजाकी तरह जल्दी-जल्दी हिल रहा है। शरीरमें लरजा बार-बार आता है। कातर दृष्टिसे देख रहा है, कितना विह्वल हो उठा है। शायद समझ रहा है कि संसारमें कोई मदद करनेवाला व्यक्ति और निर्भय स्थान है तो यही है। यहीं ईश्वर परमेश्वर सर्वशक्तिमान परब्रह्म है। अशरणको निभाना ही भक्तियोग कर्मयोग, राजयोग और आत्म-योग है। इसीसे राजाके शरणमें बहुत कष्टसे आकर पड़ा है।

है। इनमेंसे तुझे सब कुछ देय है, सब कुछ ले सकता है। मगर पुत्रकी भांति अंकमें रहनेवाला कपोतराज सब प्रकारसे अदेय है। अपना शरीर भी इसके बचानेमें तुच्छ समझता हूं, आज इस न्यायालयमें यही न्याय तोला गया है। अपने शेष जीवनके थोड़ेसे भागके लिये अपनी जवानीमें इस छोटेसे पक्षीपर अन्याय न होने दूंगा। इसका भयंकर शाप मुझे और राष्ट्र तकको भस्मसात् कर सकता है। अतः यह असह्य है। अन्याय और फिर गरीबपर पड़ जाय तो नरककी आग कभी न छोड़ेगी। राज और शरीर मेरी अन्तिम देय वस्तु है। पर इससे द्रोह न हो पायेगा।

व्याध—बलिहार जाऊं महाराज मेरे! आपको यह तनिक-सा पक्षी कितना प्यारा हो गया है! अतः अब मैं भी आपको जी अधिक न सताऊंगा, इसके बराबर किसी अन्यका मांस मँगा दीजिये। मुझे अब इसके लेनेका हठ न होगा। पर तौलकर कबूतरके बराबर मांस दिलवादें। बस यह बला अभी टल जाय।

राजा—जानें सबकी बराबर हैं, जीव होनेके नाते सब जीवित रहना चाहते हैं। न मरना किसीको प्रिय है न मारनेका झेलना। अतः इतना मांस अपने शरीरमेंसे निकाल कर अभी दे सकता हूं। शीघ्रता करो, मेरे शरीरका मांस स्वीकार है?

व्याध—नीची निगाहसे बोला, राजन्! पापी पेटके लिये सब कुछ ही स्वीकार है।

मिश्रव राजा—कौटुम्बिक पुरुष। जाओ भागे। तराजू और

हुए पहीसे ले आओ! एक पलड़ेमें कबूतर होगा और दूसरेमें चढ़ाऊँगा काटकर अपनी जंघाका मांस!

* * * *

महारानी—(महाराजका हाथ पकड़ कर) नाथ! यह क्या कर रहे हो, आप मृत्युसे लड़ने जा रहे हैं? मेरी इस युवावस्थापर क्या आपको कुछ भी तरस नहीं आता। एक आपके ऊपर ही मेरा जीवन और रूप-सौन्दर्य निर्धारित है। आपके पीछे हमारा सब कुछ मिट्टीमें मिल जायगा।

महाराजा मेघरथ—मेरा शरीर एक मुट्ठी राखका पुतला है, मरनेपर सब कुछ मिट्टी है, किसी काम न आयगा। सबको १० दिन आगे-पीछे मौतके घाट अवश्य उतरना है। सबको अपनी-अपनी पड़ी है। पराई पीरको कोई देखकर भी नहीं लखता। क्षत्रिय वही है जिनके सिरमें पराई पीर समाई हुई हो।

राजपुत्र—पिताजी! इस छोटेसे पक्षीके पीछे अपनी जान क्यों जुल्ममें गवाँ रहे हैं? इसे उड़ा क्यों नहीं देते।

महाराजा मेघरथ—पुत्र! [illegible] दीनकी रक्षा सदा न्याय-परायण होते हैं [illegible] ही क्षत्रियका परम धर्म है। यदि इस [illegible] न्याय न हुआ तो क्षत्र-धर्म नष्ट हो जायगा।

[illegible]

उपासिके ! भगिनी ! मैंने जुलाब लिया है; इससे मुझे पथ्यकी आवश्यकता है।

अच्छा आर्य ! अवश्य लाया जायगा, कहकर घर आकर नौकरको आज्ञा दी कि—

जाओ भणे ! कहींसे तैयार मांस खोज लाओ।

अच्छा आर्ये ! कहकर उस पुरुषने वाराणसीके सब बाजारोंमें तलाश किया; मगर तैयार मांस न पा सका। वापस लौटकर अपनी मालकिनसे बोला कि—आर्य्ये ! तैयार मांस नहीं है। आज कोई जीव नहीं मारा गया।

सुप्रिया—भिक्षुसे कह आई हूं कि पथ्य बनाकर अवश्य पहुंचाऊंगी; कुछ भी हो, मांस नहीं मिला तो क्या हुआ, पर पथ्य तो भिजवाऊंगी ही। यह निश्चयकर पोत्थनिका (मांस काटनेका शस्त्र विशेष) लेकर जंघाका मांस काट डाला और सोरबा पकवाकर दासीको दे दिया, और कहा कि हन्त ! जे ! इस शोरबेको लेकर अमुक भिक्षुको अमुक विहारमें दे आओ जिससे उसे आरोग्य लाभ हो। यदि मेरे विषयमें पूछे तो कह देना कि बीमार है। यह कह दासीको विदा किया, और आप चादर ओढ़कर ...रपाईपर लेट गई।

* * * *

अपनी दुकानका व्यापार सम्बन्धी सब काम निपटा कर सध्या ने-होते सुप्रिय उपासक (बौद्ध) घर आया और सुप्रियाको न ..कर अपनी दासीसे पूछा कि सुप्रिया कहां है ?

दासी—आर्य ! इस कोठरीमें लेटी हुई हैं।

उपासक सुप्रिय अपनी प्यारी सुप्रिया उपासिकाके पास आकर बोला कि—

सुप्रिय—कैसे लेटी है ?

सुप्रिया—बीमार हूं।

सुप्रिय—तुम्हें क्या बीमारी है ?

सुप्रियाने आद्योपान्त सब वृत्तान्त कह सुनाया।

सुप्रिय—अद्भुत ! आश्चर्य ! कितनी दयालु तथा श्रद्धालु है यह जिसने जांघका मांस देने तकमें भी संकोच न किया ! कितनी कठिन अग्नि-परीक्षा है ! सत्य है, श्रद्धाशीलके लिये कुछ भी अदेय नहीं है।

* * * *

सुप्रिय—भन्ते ! भिक्षुसंघ सहित कलका मेरा निमन्त्रण स्वीकार करें।

तब बुद्धने मौन होकर स्वीकृति दे दी। इसके बाद अगले दिन संघ सहित बुद्ध सुप्रियाके घर पधार गये परन्तु सुप्रियाको घरमें न देखकर पूछा कि सुप्रिया कहां है ?

सुप्रिय—भगवन् ! वह बीमार है।

बुद्धजी—उसे बुलाना चाहिए।

सुप्रिय—इतना अशक्त है तथा बीमारी इतनी भयंकर है कि आ नहीं सकती।

बुद्धजी—उसको सहारा देकर ले आओ।

सुप्रिय उपासक अपनी दानेश्वरी भगवती सुप्रिया प्राण-प्रिय पत्नीको कन्धेका सहारा देकर धीरे-धीरे बाहर ले आया। बुद्धने एक ही बार कृपा दृष्टिसे देखा कि घाव तुरंत अच्छा हो गया। धार्मिक कथा कहकर बुद्ध अपने विहारमें आ गये।

* * * *

आनन्द! भिक्षु संघको एकत्र करो।

आनन्दने क्षण भरमें भिक्षु संघको एकत्र कर दिया।

बुद्ध—भिक्षुओ! सुप्रिया उपासिकासे किसने मांस मांगा था?

एक भिक्षुक—भगवन्! मैंने मांस मांगा था।

बुद्ध—क्या लाया गया भिक्षु?

वह—लाया गया तथागत।

बुद्ध—क्या खाया तूने भिक्षु?

वह—हां खाया मैंने।

बुद्ध—कुछ समझमें आया? कुछ पहचानमें आया?

वह—नहीं।

बुद्धने फटकारा और कहा कि बगैर समझे-बूझे ही मांस खा लिया? मूर्ख! मोघ पुरुष! तूने मनुष्यका मांस खाया?

फटकार कर इतने नियम बनाकर भिक्षुओंको सुनाये—

बुद्ध—भिक्षुओ! मनुष्य इतने श्रद्धालु भी हैं जो अपने शरीर तकका मांस भी दे देते हैं।

(१) भिक्षुओ! मनुष्यका मांस न खाना चाहिये। जो खाय उसको थुल्लच्चयका प्रायश्चित।

खद्दरकी साड़ी

आज इस नव पति-पत्नीमें थोड़ी जरासी बातपर मनमुटाव हो गया। बात बहुत मामूली थी। वह थी साड़ीके प्रसंगकी बात। पत्नीकी इच्छा थी कि अबसे साड़ी खद्दरकी आवें।

स्वामी—खद्दरकी साड़ी। यह इस गुलाबी और सुकुमार शरीर पर शोभा न देगी। इस चन्द्रवदन पर बनारसी रेशमी साड़ी अपने भाग्य को सराहेगी। बस तुम्हारे लिये वही मंगवाई गई है। आज कुछ मालूम होता है, तुम गांधी जी का लेक्चर सुन आई हो। इसी से यह खद्दरकी सनक सवार है।

पत्नी - कुछ भी समझो, बात बिल्कुल स्पष्ट है कि मुझ अब मुर्दों से भय लगने लग गया है। ४०००० हजार मृतक कीटाणुओंका पाप रूप भार अब मैं एक पौंड रेशमके रूपमें नहीं सम्हाल सकती। रहा विलायती कपडा, उसमेंसे चर्बीकी इतनी खराब गन्ध आती है कि आप निश्चय समझें, मारे बदबूके दिमाग फटने लगता है। आत्मा तड़प उठती है, मुझे अब स्वदेशी मिलोंके कपडोंसे घृणा

थी, जिसपर बोलना तक बन्द हो गया। पर यों सोचो तो बात बहुत बड़ी भी थी। एक ओर पतन था और दूसरी ओर था उत्थान। देखिये, जीव उत्थानकी किस भांति होती है, इस रस्सा कशीने १० दिन तक अपना पूर्ण बल खर्च किया है। पर अपने-अपने पणसे कोई एक इञ्च भी हटनेको तैयार नहीं है। मौनकी शृंखलामें बंध जानेसे घरके बहुतसे कामोंके बिगड़नेमें एक दूसरेको कोई पर्वाह न थी। घरमें इस युगल जोड़ीके सिवा कोई नन्हा बालक भी तो न था जिसकी मार्फत कुछ राजीनामा होनेकी आशा भी होती। मगर इस अवस्थामें मियां ही निढाल हो गये। १० ही दिनमें बुद्धि ठिकाने आ गई दिमागसे माराका सारा टोड़ीपन निकल गया। स्वतन्त्रता रूपी डाक्टरके सामने गुलामी रूपी अनादि रोग टिक न सका।

मियांको अन्तमें यही विचार आया कि क्यों न खद्दरकी ही साड़ी मँगवा दी जाय। जिसमें यह कजिया मिट जाय। बफपर खाना-पीना, ठंढाई, चटनी, शर्बत आदि सब कुछ मिल जाता है। मगर मधुरालापके बिना ये सब कुछ भी नहीं जँचते। ऐसी स्वतन्त्रता देवीकी अवज्ञा करना पांच हत्याओंसे अधिक पाप है। हाथके कते बुने वस्त्र हमें क्यों बुरे लगते हैं? अन्य देशीय वस्तुओंने हमें कितना पतित कर दिया है। आखिर देवीजी यही तो कहती हैं कि हम भारतमें जन्मे हैं तो विलायतमें मरने थोड़े ही जायगें।

जलवायु तो हो भारतका और कफन आवे विलायतसे। कितने शर्मकी बात है। अब तो मैं भी स्वदेशाभिमानी बनूगा। साड़ी

आने ही देवीजी तुरन्त पोल खोलेंगी। अगले दिन सवेरे ही गदर भण्डारसे घरमें कई रंगकी साड़ियां आ गईं, मगर गृह-कोकिला फिर भी चुप थीं। हाय! अब भी वह मनोहर पैकी-कूककी इन कानोंको सुननेका सौभाग्य न मिला। वसुदेव हाथ मलते रह गये और विचारने लगे कि शायद अब पूर्ण प्रायश्चित्तके बिना सुलह होना कठिन है।

+ + + +

आज रविवार है, दफ्तर बन्द रहेंगे, क्योंकि छुट्टी है, नलपर जाकर सुई सवेरे वह स्नान कर आए हैं और आज घरके द्वारपर होली जल रही है। एक तार भी घरमें न छोड़ा। सब अग्नि देवके उदरार्पण कर दिया। नये सिरेसे सब क्षौम वस्त्र धारण किये। चौकेमें आकर ये नये चहरपिया साहब बड़े गौरवके साथ विराज गये। देवीजीने स्वामीजीको दृढ़ मौनमें उत्तमोत्तम भोजन परोस दिये। भोजनसे निवृत्त होकर स्वामी शयनागारमें चले गये। देवीजीने तिपाईपर कफरी गिलास पहले घरसे ही रक्खा था। कोई काम ऐसा न छोड़ा कि जिसमें किसीको किसीकी शिकायत करनेका अवसर आ सके और खासकर पत्नीकी तो इसमें बड़ी भारी जिम्मेदारी होती है।

देवीजीने चौकेके सब बर्तन मलकर सदाकी भांति साफ किये। उन्हें अलमारीमें रखकर सफेद वस्त्रसे सबको ढाप दिया, जिससे मक्खी या किसी अन्य जन्तुको स्पर्श करके विष छोड़नेका अवसर न आए। सन्दूकमेंसे सीने-पिरोनेका सामान लेकर कालीनपर सदाकी भांति कसीदा काढ़ने बैठ गई

दिनके तीन बजे होंगे, बाबूजी लालटेन जलाकर हाथमें लटकाये हुए उसी कमरेमें आकर पुस्तकालयकी सब पुस्तकोंको प्रकाशमें इधर-उधर देखने लगे। परन्तु स्वार्थ पूर्ण न हुआ देखकर मेजके नीचे रद्दीकी टोकरीके कागजोंको रोशनीके पास ला-लाकर उन्हें उथलने-पुथलने लगे। बहुत देरके बाद यह हाल देखकर देवीजी जरा हँसकर बोलीं कि स्वामिन ! किसकी खोज है ? पतिदेव तुरन्त मुसकुरा कर कह उठे कि धर्मपत्नीजी ! जिसको ढूंढ़ भाल मुझे थी वह अमूल्य वस्तु मेरे अहोभाग्यसे पुनः मिल गई।

पत्नी—वह तो आपकी सेवामें सदा ही उपस्थित थी। पर आपने उसे चर्बी और कीड़ोंकी मांसोंसे ढांपकर अपवित्र या भड़ बनाकर उसे विलासिताके कुचक्रमें फँसाकर सदाके लिये दुर्गतिके गर्तमें सड़ाकर रखना चाहा था। पर हम अबलाओंके पास उपेक्षाके अतिरिक्त और क्या शस्त्र पुरुषोंने रख छोड़ा है। यदि इस मौनको आप सदाके लिये तुड़वाना चाहते हों तो यह बहुरुपियापन न रखना।

पतिने नतमस्तक होकर कहा कि चाहे नौकरीसे कल ही जवाब क्यों न मिल जाय परन्तु अब स्वदेशी वस्त्र और आर्य वेश भूषा कभी न छोड़ूंगा। देवीने उठकर पतिके पैरोंमें अपना मस्तक टेक दिया कि दूसरे ही क्षण एक मग्न हो गये, और द्वितीयाका उनमें अभाव था।

———

होटल

दीनाकी विधवा विमाता इसे अपने पुत्रसे भी अधिक मानती है। इसकी एक चिर-रोगिनी पत्नी है, दो-तीन बच्चे हैं। बस यह कुटुम्ब भी छोटा-सा है। पर सबसे बड़ी बात यह है कि दीनाके सब कहनेमें चलते हैं। कोई इससे बाहर नहीं जा सकता। कुटुम्बके ये सब आदमी मात्र एक आटेकी दूकानसे पलते हैं। इनका भाग्य आटेकी मशीनके सहारे चलता है। यह मशीन इनके चाचाजी की है। चाचा की दीनापर इतनी ही कृपा-दृष्टि है कि दीनासे सिर्फ पिसाई चार्ज नहीं की जाती। चाचा जैसे महापुरुषोंकी अनाथ दीनापर यह दृष्टि क्या कुछ कम अच्छी है—इतनी उदारता तो डूबनेको तिनके का-सा आश्रय है। आखिर दीना बेचारा गरीब ही तो है। गरीब पर सबको थोड़ा बहुत तरस इसलिए आ जाता है कि इसकी हालतसे सब काम चलते हैं। चाचाजी वैसे तो अलग रहते हैं, वहीं कहीं जैन-मन्दिरवाली गलीमें ही घर है, पर दूकान अच्छे मौकेपर है। ठीक सड़कपर दूकान है। [illegible] पिसाई आ जाती है। कोई

फरोशोंमें इनका नाम पहले लेते हैं। रूप-रंगके तो जैसे हैं वैसे ही हैं, पर भाग्यके सिकंदर हैं। इस समय चाहें तो मिट्टीमें हाथ डालकर सोना ले सकते हैं। पर इस मंजिल तक अभी इन्हें पहुंचनेकी आशा न होती थी। घरमें मियाँ बीबीके अतिरिक्त और तो कोई है नहीं। तब किसके लिए इतने पापड़ बेले जायँ, यही समझ मन मारके रह जाते थे। इसीसे यह थोड़ीसी ममता दोना पर रख रहे हैं। बाप तो इस बेचारेको बचपनमें ही छोड़कर चल बसे थे।

*　　　*　　　*　　　*

दोनाकी दुकान इसलिए चल निकली है कि जार्जपंचम गद्दी पर बैठने इलैंडसे भारत आ रहे हैं। इसीसे जल्समें बड़ी चहल पहल है। लोगोंके विचारसे एक करोड़ आदमी एकत्र हुए हैं। कुछ कुछ बात सच भी निकली। बारादरीमें भी उन दिनोंमें बहुत साधु विराजमान थे। दिल्लीमें पहले ऐसी भीड़ कभी नहीं देखी गई। कन्धे से कन्धा मिलता था। यह दर्बार-क्रिया होनेके बाद उस भूमिके भाग खुल गये। और उस जगहका नाम किसने Kings way पड़ गया। उस भूमिके साथ देहली मासके भाग खुल पड़े थे औद्योगियोंकी उन दिनों पांचों अंगुलियां घीमें थीं। धमाओंने अपना भाग सराहा था। टोपीवालोंने धुंएके माल्को असली के दामों बेचा। घीवालोंकी आजीविका क्या कुछ कम सराहनीय थी [illegible] भी पाव छटांक [illegible] बना था। दूधवालोंका कहना है कि ऐसा जमाना अब देखनेको भी न मिलेगा, हमने पनियाला दूध) [illegible] अपने हाथों बना है? मोदियोंके तो पौबारा थे।

छक्कनलाल मोदी तो इसीमें बन गये थे। दालवाले पूरे मालदार कहला गये। हमारे दीनाके भाग्यका पुराना जंक इसी दर्बारके कृपा कटाक्षसे उतर गया। पैसा खूब कमाया था। पर कम तोलना और नया-पुराना एक करनेका काम इससे न हुआ। इन दो अपराधोंको किसी शुभ शक्तिने दीनाके पवित्र अन्तस्तलमें स्थान न जमने दिया। अन्तमें इस सत्य धर्मने दीनाका पलड़ा बर कर दिया। आखिर परिश्रम भी तो कोई वस्तु है। धनके साथ बाजारमें साख भी पहलेसे अधिक जम गई। लोग यों ही रुपया इसके घरमें सर्राफोंके टड्डुवेरकी तरह फेंक जाते मानो दीना रुपयों-का चौकीदार है। चाचाजीसे अधिक विश्वास अब दीनाका है। पर इसके मनसमुद्रमें इतना क्षुब्ध होनेपर भी घमण्डका ज्वारभाटा कभी नहीं आ पाता था। प्रकृतिने दीनाको दीनप्रकृति बख्शी थी। अमीर-कबीरोंका सा खाऊ-उड़ाऊ न था। दीनानाथ इस नये नकोर प्रवाहके तीखे झोंके खाकर भी भोली और सरल प्रकृतिका स्वामी बना हुआ था। इसीसे पेटमें पाप न रखता था और सबको समान भावसे देखनेका अभ्यास इसीसे बना रहा था। सामायिक संवर यथा समय करनेमें कभी न चूकता। मूलचन्द मुसद्दीलालकी धन-शालामें अकसर कभी-कभी आये गये सब साधुओंके दर्शन करने दोनों वक्त जाता था। मुनियोंको आहारपानीकी टहल करानेका इसके अतिरिक्त और किसीको ध्येय न था। जिससे भाग्य ऐसा लगा कि सज्जनोंमें इज्जत कमाने और मुनियोंके सत्सङ्गसे धन कमाना। अब आपही कहिए इससे बढ़कर भी कोई भाग्यशाली हो

सकता है। धन और धर्म कमानेवाला ही आदर्श कमाऊ समझा जाता है। अब तो दीनाके पीछे कुछ मनचले दिल्लीके शौकीन मित्र इस तरह इसे घेरे रहते जैसे गुड़पर मक्खी! दीना ही था जो पगड़ी रखकर घी खाना जानता था। वह आगन्तुकोंकी सेवाको बादाम-की ठंडक तथा पान-इलायचीसे आगे आया इच्छ भी नहीं बढ़ने देता था। पक्का बनिया था। समझे हुए था कि विलासिताके रङ्गमें वाजिदअली शाह जैसोंका पता न चला तो यहां २-४ हजार रुपल्लियां किस बागकी मूलियां हैं। इसीसे अपनी सादगीसे कभी बाहर न होता था, और मित्रोंके सब्जबाग दिखलाने पर भी वह बंबीमें सांपकी तरह हमेशा सीधा रहता था और याद रखता था कि ये अम्माजीकी अक्षरशः बातें अनुभूत और सत्य सिद्ध हैं। वह गोपीचन्द्रकी तरह सच्ची मातृ भक्ति करता था। इसीसे मित्रोंका इसपर जोर न चलता था।

*　　*　　*　　*

छुट्टनलाल—क्यों भाई दीनानाथ, आज हड़ताल है। गांधीजी गिरफ्तार हो गये हैं। मगर तुम फिर भी दुकानके पट्टेसे इस तरह चिमटे बैठे हो जैसे छतमें चमगीदड़। आज तो पूर्ण हड़तालकी सम्भावना है। अतः चलकर कहीं जी बहलायें। हमारी इच्छा तो कुतुब चलनेकी है।

दीना—भाई, अब चलो तो निगम्बोध तक तो चल सकता हूं आगे नहीं।

मिट्ठनलाल—निगम्बोधमें क्या है?

दीना—वहां यमुनाका बहता सौन्दर्य देखनेको मिलेगा, और जलते हुए मुर्दोंको देखकर मिलेगी वैराग्यमयी शिक्षा—बस नहा धोकर चले आयेंगे। अधिक फुर्सत नहीं है। क्योंकि महावीर भवनमें दो मारवाड़ी साधु आये हुए हैं। उनका व्याख्यान सुनेंगे, और वे व्याख्यानके बाद ही वहांसे चलकर यहां आ जायेंगे। तब भला फिर उन्हें आहारके लिये मेरे सिवाय घर कौन बतायेगा? यहांके जैनोंमें तो इतना भी राम नहीं है। फिर उनके अंगूठेमें कुछ जख्म पड़ गया है। दो बजे नन्दू जर्राहके यहां ले जाऊंगा। माफ करें. मुझे कुतुब जानेकी फुर्सत नहीं।

मिट्ठनलाल—साधु होजा साधु, अभी तो सिरपर सबके सब काले हैं। अभीसे वैराग्यकी बातें बघारने लग गया। लालाको फुर्सत ही नहीं होती। हम तो हर्षभरे दिनोंके उत्साहसे भरपूर होकर आये थे; पर आपने दोस्तीकी कुछ भी कदर न की। हमारे मन पर इस तरह ढेला पत्थर बरसाने लगे। अच्छा, रातको तो फुर्सत होगी। आज रातको तो हम तुझे जरूर एक नवीन आश्रममें ले जाकर ही मानेंगे।

दीना—दिल्लीके गली मोहल्ले कूचे सब मेरे गाहे पड़े हैं। मुझे दिल्लीमें कुछ भी नवीनता नहीं जंचती। आज अम्माजीको बुखार आ गया है। शायद ही रातको फुर्सत मिले।

जगीमल यार तुम भी ग़ज़ब हो हमेशा घरकी मोरीके कीड़े ही रहते हो कभी नरराहके लिये भी चला करो जिन्दगीका मज़ा लेना कोई हमसे सीखे

दीना—भाई! मुझे तो माताजीकी सेवामें ही आनन्द है। धर्मोका पालन इस आटेकी दूकानसे हो जाता है और आत्म शान्ति सन्तोंके दर्शनसे मिल जाती है। मुझे इससे अधिक जिन्दगीका कुछ भी मज़ा न चाहिये। थोड़ेसे सर्राफीके अक्षरोंको छोड़कर मुझमें इल्मी लियाकत भी नहीं है। मुझे मालूम है, शायद तुम सन्ध्यामें महावीर लाइब्रेरी ले चलोगे। पर मैं पुस्तकें पढ़ना भी नहीं जानता। रहा सिनेमा-थियेटर, मैं इतना बड़ा हो गया, कभी उन्हें देखने गया ही नहीं।

भोंदूमल—आज तुम्हें वहां ले जायेंगे जहां सातों पीढ़ीके पित्रोंकी तृप्ति होती है।

दीना—भाई, हमने तो पितृ तर्पण और श्राद्ध करना सब छोड़ दिया है। अब तो हमारी अम्माजीको भी इसका वहम तक नहीं है। जीतोंको सताकर मरे हुएके नामपर श्राद्ध करना भी कुछ मअ-मनसी है? भाई मैं जीते जी पितालय कभी न जाऊंगा। मेरा पितालय है मेरी पूज्या माता, जिनकी भक्ति करना मेरा कर्तव्य है।

हांडाराम—अच्छा, सत्संग आश्रममें तो चलोगे?

दीना—मुझे सन्तोंके समागमके अतिरिक्त और किसीका भी सत्संग पसन्द नहीं। सब मुल्लेखास मूढ़करे पैसेके यार देखे! नाम संतोंका सा, लिबास सन्तोंका सा पर पेटके हैं इमलोंके पत्ते-पर दह। दूर परको ऐसे सन्तोंको। अगर शान्ति और धर्म-शिक्षाका कोई स्थान हो तो चला चलूंगा। पर आपके और और दुश्मनके अड्डापर मैं कभी नहीं फटकनेका। अगर ऐसी वैसी

कुत्तेसे भी बदतर

उमर खय्यामने न जाने किस मद्यका कथन किया था परन्तु शान्तिकुमार उसका आशय वही रोहित वस्तु ही समझ पाया था जिसके रंगमें अग्नि वर्षा होती है, जिसके जलमेंसे ज्वाला-की लपटें निकलती हैं, जिसका प्रकाश पुरुषको मदान्ध कर देता है। वह कहता था कि जब उमर खय्याम जैसे विद्वानने मदिराकी प्रशंसा की है तब मैं नहीं समझता कि टिम्परन्स सोसाइटीके मूर्ख क्यों क्रन्दन किया करते हैं, शायद इन्हें बुद्धिमत्ता मानो छूतक न गई हो। जो मनुष्य मदिरा पीकर सच्चिदानन्दमय जीवनकी सुगति नहीं देख सकता उसको चाहिये कि वह मृत्युगत हो जाय या आत्म-घात कर ले।

क्यों माताजी! महर्षि लोक जो सोमरसका पान किया करते थे क्या वे मूर्ख थे?

तब माता तब आकर कहती कि पुत्र! तुम विज्ञानवेत्ता हो, मैं तुम्हारे साथ चर्चा नहीं कर सकती परन्तु स्मरण रहे कि एक दिन

तुम्हें अवश्य रोना होगा। मेरी बातको पल्ले बांध रक्खो, तुम आंसू बहाओगे, शान्ति! और पश्चात्ताप मुक्तमें करोगे।

शान्तिकुमार कहता माता! आप एक अच्छी व्याख्यानदायिका हो, कहीं कांग्रेसमें तो आप नहीं प्रविष्ट हो गई। अच्छा शीघ्रता करो दफ्तर जानेमें देरी हो रही है, आलू बनानेमें तो माताजी आपने बड़ी बनस्पति दिखा दी है, ये बड़े स्वादु हो रहे हैं।

* * * *

माता सोचती थी कि कैसा हठी बालक है, सब उनका-सा स्वभाव है; वे जिस बातपर हट जाते थे, टलते ही न थे और वे भी आत्मप्रिय थे, उनका भी चर्चा करनेका ही स्वभाव था, वे पक्के हठी थे।

माताका नाम रामाबाई था और वह थी आदर्श विधवा। नखसे शिखतक श्वेत वस्त्र पहनती थी। मानो कोई श्वेतवस्त्रादेवीका अवतार है। वर्षके ब्रह्मचर्य रूपी अखिल व्रतने नेत्रोंमें एक विलक्षण तेज पैदा कर दिया था, मुख-मण्डलपर कान्तिकी अमोघ वर्षा थी। वह स्वाद-शृङ्गार न करती थी परन्तु बनाव-शृङ्गार करनेवाली कालेजकी कितनी ही बालिकाओंसे अत्यन्त सुन्दर थी। इस अरुण और श्वेत सागरमें आंखोंकी सुन्दर नौकायें तैरती थीं और तटस्थ पान्थजन लोभकी तृष्णा तरंगमें हृदय मलते-मलते लय हो जाते थे।

शान्तिकुमार इसका सर्वस्व मात्र था, वह दफ्तर चला जाता तो वह चरखा काता करती और अध्यात्म पद गाती रहती, और जब वह लौटकर आता तो उसे प्यारसे नई-नई सात्विक वस्तुएं खिलाती,

और जब रात्रिके समय कोई इष्ट-मित्र उसे किसी गलीकी गन्दी नालीसे घसीटता हुआ ले आता तो माताकी आँखोंसे छम-छम अश्रुधारा बरसने लगती, वह सोचती थी कि क्या इसे कभी भी समझ न आयगी।

एक दिन शान्तिकुमार शराबकी मूर्च्छासे मुक्त होकर देखता है कि मस्तकपर पट्टी बंधी है, शय्याके सरहानेकी ओर माता खड़ी है सूरजकी एक नन्हीं-सी किरण उसके चमकीले काले बालोंसे खेल रही है, और माताकी आंखोंसे अश्रुधारा निकल रही है।

शान्तिकुमारने पूछा माता रोती क्यों हो? माताने शीघ्रतासे आंसू पोंछकर कहा—रोती कहां हूं।

शान्तिसे सब नागरिक घृणा करते थे, इसका कोई मित्र न था मात्र इनेगिने स्वार्थियोंके इसका कोई अपना न था, ले-देकर बस माता ही इसका सर्वस्व थी। इसकी दौड़-धूप माता तक थी, इसे यह मातृभक्तिसे सच्चा प्यार करता था, कितने ही बार संसारसे तंग आकर वह माताकी गोदमें बैठकर रोने लगता था तथा कई बार इसने मातासे कहा था कि मां यदि तुम्हें कभी किसीने दुखी किया तो मैं उसका सर काट दूंगा। कितनी ही बार उसने अपने साथी कलकोंमें कहा था कि मां! अरे माता जैसी सात्त्विक और उत्तम संसारमें अन्य क्या है आज इसी माताको रोते देखकर शान्तिकुमार उद्विग्न हो उठा, बोला—माता सत्य-सत्य कह दो। रोती क्यों हो?

माताने धीम स्वरमे कहा रोती हूं। शान्तिकुमार! इसलिये कि तुम शराब पीना नहीं छोड़ते शान्तिकुमार हंसने लगा -

सन्ध्याका समय है। राज-मार्गपर अन्धकार विराजमान है। अभी दीपकोंका प्रकाश नहीं हुआ है। रामाबाई बागमेंसे जा रही है। अन्तस्तल प्रसन्नताके मारे मांमों उछल रहा है। मन ही मन इसे एक आत्म-तेजकी झलक दिखाई दे रही थी, सारा दिन इसने शराबकी दुकानपर पहरा देकर बिताया था, इस दिन एक बार भी शान्तिकुमार इधर नहीं आया, उसके मनमें बड़ा आमोद था कि इसका यह शस्त्र काम कर गया है। आज तो शान्तिने शराब न पी होगी। अन्तमें एक समय ऐसा दृष्टिगत होगा कि जब इस मनोबल और चरित्र संगठनकी विजय होगी, इस प्रकार मैं प्रति दिन यहां आया करूंगी, और तब तक शान्तिको विवश होकर यह दुर्व्यसन छोड़ना ही पड़ेगा।

* * * *

इन्हीं विचारोंका आन्दोलन करती हुई वह अपने घर वापिस आ रही थी कि बागमें अन्धकारकी पूर्ण राज्य-सत्ता जम चुकी थी। पक्षीगण वृक्षपर अपने घोसलोंमें शयन करनेको यद्धचेष्ट थे और पश्चिमके आकाशमें एक हलकी-सी लालिमाज्योति शनैः-शनैः अन्तर्गत होती जाती थी और रामाबाई वृक्षोंको पार करती हुई अपने घरको जा रही थी।

* * * *

सामनेसे कोई लड़खड़ाता हुआ आ रहा है, इसकी वाणी शराबकी अधिक मात्रा पी जानेके कारण निकृष्ट हो गई है, वह अश्लील गीत भी गा रहा है। रामाबाई एक ओर सटकर खड़ी हो गई

जिससे पत्रोंमेंसे आती हुई ज्योतिकी अन्तिम किरण छन छन कर इसके मुखमण्डलपर पड़ने लगी।

आगन्तुक पुरुष इसे अनायास देखकर मारे प्रसन्नताके एकदम उछल पड़ा और बोला जा ··न ··

रामाबाई द्रुत गतिसे आगे बढ़ी। मयपने दौड़कर उसे पकड़ लिया और ताण्डव नृत्य करता हुआ बोला कि अब······दूंगा।

रामाबाईने अब इसे अच्छी भांति देखा तो इसके हाथोंके तोते उड़ गये और सताई हुई सिंहनीकी तरह गर्जकर बोली कि ओ शान्ति! परे हट जा, परन्तु शान्तिकुमारने मदिराके अन्ध और पाशविक बलमें प्रसित होकर उसे और भी दृढ़ता-पूर्वक दबाकर पकड़ लिया और नाचता हुआ बोला कि अब ·····तो······अब तो·····अब····· प्या··· ··।

रामाबाईने अपने आपको छुड़ानेकी अत्यन्त चेष्टा की परन्तु शान्तिमें पाशविक बल आ जानेके कारण रामाबाईको जमीनपर गिरा दिया, रामा भयभीत होकर बोली शान्ति! शान्ति! मैं तुम्हारी माता हूं छोड़ दो।

परन्तु शान्ति इस संस्कृतिमें नहीं था कि जहां कोई किसीकी वाणीको पुकार सुनता है। इसने तो रामाबाईके कपड़े तक फाड़ दिये। यदि लोक उसकी घोर पुकारपर न आकर छुड़ाते तो······।

* * * *

अब सूर्यनारायण उदयाचलकी क्रीड़ा करते-करते उदय हो रहे हैं। इनकी किरणें गवाक्षोंमेंसे मानो झांक-झांककर देख रही

शान्तिकुमारकी मूर्च्छा टूटी और देखा तो सिरहाने जिनमोहन डाक्टर बैठे हैं। मस्तकपर बरफ फेर रहे हैं, इनके पास ही कम्पाउण्डर उनसे खड़ा-खड़ा बातें कर रहा है · इन्हें देखकर शांतिकुमारने आंखें मीच लीं और सोचता है कि मैं कहां हूं। कुछ स्मरण नहीं होता······ घरसे जाकर खूब मदिरा पी थी, फिर मैं बागकी ओर गया था··· स्मृति नहीं ·····हां फिर मानो किसीसे लड़ाई हुई थी, या तांगेके नीचे आ गया था ·····शायद ·····इसी अवस्थामें डाक्टर अपने कम्पाउण्डरसे कह रहे थे कि··· ··यथार्थ है पशुमें और शराबीमें अन्तर ही क्या होता है ? यदि कल मनुष्य भाईजीकी पुकार सुनकर वहां न पहुंचते तो यह नराधम रामाको न जाने मार ही डालता। शान्तिकुमार चौंक पड़ा, परन्तु आंखें मींचकर पड़ा ही रहा······कम्पाउण्डरने कहा कि 'डाक्टर महोदय! क्या इसे यह ज्ञान न था कि यह हमारी माता है।" वे बोले कि अधिक नशा पीनेसे मस्तिष्क शक्ति इतनी नष्ट प्रायः हो जाती है कि शून्यता छा जानेके कारण आंखें देखकर भी नहीं देखतीं, कान सुनकर भी नहीं सुनते।

शांतिको इस समय कम्पकम्पी आ रही थी, डाक्टरने समझा कि यह बेसुध है, ज्वर आ रहा है, परन्तु वह सुधमें था, चेतमें था, सब कुछ सुना था, सब कुछ समझा था। चिकित्सक अपने सहायकसे कहता है कि जो आदमी मातापर भी हाथ उठा सकता है तथा मातापर भी अत्याचार करनेपर उतारू हो जाता है, क्यों कम्पाउण्डर साहब इसमें और पशुमें क्या अन्तर है ? कम्पाउण्डर बोला—

डाक्टर साहब, धीमे स्वरमें कहते हैं कि वह कुत्तेसे भी बुरा है। कुत्तेको अकल नहीं होती परन्तु मनुष्य तो बुद्धिका सागर होता है। कुत्ता यदि ऐसा करे तो वह तो अन्तमें मात्र कुत्ता ही है। परन्तु मनुष्य यदि ऐसा करे तो वह कुत्ता नहीं किन्तु कुत्तेसे भी बदतर है। शान्तिकुमारके शरीरसे प्रस्वेद बह रहा था। उसका मुख-मण्डल रक्त वर्ण हो उठा। एक बार डाक्टरको प्रतीत हुआ कि इसके दांत कटकटा रहे हैं और पुनः मूर्च्छित हो गया है, कम्पाउण्डरने कहा—कि चलिये न पट्टी तो समान हो चली है, इसकी अभी सुषुप्ति ही नहीं टूटी।

डाक्टरने कहा हां चलो जरा सामवाले प्रासादमें रामाबाईको फिर देख आवें। इस समय तुमने औषधि तो पिला दी है न ?

कम्पाउण्डरने कहा हां !…और वह दोनों बाहिर जाने लगे। उस समय शान्तिकुमारने कहा "कुत्तेसे भी बदतर …

वे दोनों खड़े हो गये—शान्तिकुमार बड़बड़ा रहा है, कुत्तेसे भी बदतर—कुत्तेसे भी बदतर—डाक्टरने कहा शांतिकुमार ? परन्तु वह अचैतन्य हो कुछका कुछ बक रहा था—मां—मां बालक अवस्थामें तेरा दूध पिया था। शीतल रात्रियोंमें प्रेम पूर्वक शयन कराया था—तूने मोहवशात् आंसू बहाये थे, मैंने तुम्हें इसका बदला दिया है, कुत्तेसे भी बदतर—कुत्तेसे भी बदतर—डाक्टरने कहा शान्ति …

शान्तिकुमारने कहा तुम [illegible] थीं—तुम कितनी थीं—तुम जानती थीं कि मैं तुम्हारा [illegible] हूँ—[illegible] हूँ और मैं [illegible] कुत्तेसे भी—

कुते—से भी—एकाएक डाक्टरने कहा ! अरे इसका तो दिल बैठता जा रहा है—बरांडी लाओ !

कम्पाउण्डरने शीघ्रतापूर्वक बोतल निकालकर शांतिके मुखके निकट लगा दी—इसकी गंधसे शान्तिकुमार जग पड़ा। डाक्टरने कहा शांति, इसे पी जाओ। शान्तिकुमारने कहा "नहीं, मैं शराब न पीऊंगा"

"शांतिकुमार! यह दवाई है" शान्तिकुमारने कड़क होकर कहा कि "मैं न पीऊंगा" डाक्टर, आजसे शराब न पीऊंगा—दवाई भी मैं न पीऊंगा। समझे चले जाओ यहांसे" यों कह कर वह पुनः अचेत हो गया।

वास्तवमें शान्तिकुमारने उस दिनसे शराब नहीं ही पी। एकदम शराब त्याग देनेसे दूसरे ही दिन इसके शरीरमें निर्बलताके कारण लरजा आने लगा, अंग प्रत्यंगमें कष्ट होने लगा, पहिले वह उठा था परन्तु अशक्त होनेसे गिर पड़ा और वह फिर चारपाई सेवन ही करता रहा।

डाक्टरने कहा शान्तिकुमार! तुम्हें थोड़ीसी मदिरा पानीमें मिलाकर अवश्य पीनी पड़ेगी। उसने कहा—डाक्टर, मैं कितनी बार कह चुका हूं? मैं न पीऊंगा। मर जाऊंगा पर शराब न पीऊंगा। मैंने शराब छोड़ दी है "भाई? यह ढंग छोड़नेका नहीं है थोड़ी-थोड़ी छोड़ी जा सकेगी" शान्तिने आवेशमें कहा--सकेगी से कुछ प्रयोजन नहीं है। मैंने त्याग दी है बस? जाओ!

डाक्टर निराश होकर चले गये। रामा बाई घायल थी—

माताने कहा यह क्यों, यह बोला जी चाहता है कि आज भूतलपर सोऊं। चटाईपर एक श्वेत वस्त्र बिछा दिया और उसपर शांतिकुमार सोकर बोला कि माता जिस ओर मेरा मस्तक है उस ओर आकर खड़ी हो जाओ, माताके उस ओर खड़ी होनेपर उसने फिर यह प्रार्थना की कि यह सरहाना हटा दो। माताने सरहाना अलग कर दिया।

माता! अपने चरण आगे कर दो—लो मैं उनपर अपना मस्तक रख लूं। माताने ऐसा ही किया तब चरण युगलमें मस्तक रखकर फिर शांतिकुमारने निवेदन किया माताजी एक वस्तु मांग लूं दोगी!—क्या मांगते हो बेटा, प्रथम वचन दो कि दूंगी—कुछ कहेगा। भी बेटा·····

शांतिकुमार—माता यह कहो कि मैंने अपने बदमाश बेटेको माफ कर दिया जो कुत्तेसे भी बदतर था।

रामाबाईकी आंखोंमें आंसू भर आये और बोली पुत्र! इसमें तुम्हारा क्या अपराध था?

माता! अपने प्रणसे क्यों फिर रही हो—तुमने कहा था कि जो मांगेगा वही मिलेगा—माताने बहुत अच्छा। बेटा क्षमा किया।

शांतिकुमार—नहीं माता इस प्रकार कहो कि मैंने अपने बदमाश बेटेको क्षमा कर दिया कि जो कुत्तेसे बदतर था—यह सब कुछ कहो। रोते हुए माताने कहा कि यह मैं नहीं कहूंगी कि तुम बदमाश हो।

अपने अश्रुधारासे माताके चरण धोकर कहने लगा कि माता आपको कहना होगा और यही कहना होगा। रोदन पूर्वक माता

कह रही है कि "मैंने अपने बदमाश बेटेको माफ किया जो कुत्तेसे भी बदतर था।"

शांतिकुमारने मंदस्वरमें कहा—माता बड़े सौभाग्यकी बात है कि जो आपने क्षमा कर दिया—अच्छा अब प्रणाम हो! इस प्रकार कह कर वह रामाके चरण कमलोंमें ऐसा सोया कि जैसा समस्त संसार सोता आया है कि जो फिर निद्रा भंग नहीं होती।

—सुमित्र भिक्षु

भिक्षुसिंह और राजसिंह

मगध देशका राजा श्रेणिक बड़ा प्रतापी और ऐश्वर्यवान् था। राजाओंके पास जितने सामान होते हैं उसके पास भी सभी भरे हुए थे। मानो वह पृथ्वी परका दूसरा इन्द्र था। वह बड़ा विद्यानुरागी और विद्वान भी था। उसकी प्रजा बड़ी सुखिया थी। श्रेणिक किसी प्रकारका किसीको भी दुःख नहीं देता था, किसीका भी अधिकार नहीं छीनता था। प्रजापर कर भी इतना थोड़ा लगा रखा था कि देनेमें किसीको कुछ भी भार नहीं होता था। प्रजाको प्रसन्न रखना उसने अपना कर्तव्य समझ लिया था यद्यपि राजपाट करता था परन्तु उसका हृदय बड़ा सरल और साफ था। वह मद्यपान करके संदेह धर्मद्वेषमें मग्न नहीं था न किसी प्राणिकी हिंसा ही करता था। एक दिन वह राजा अपने मनको बहलानेके लिए रथपर चढ़कर मण्डित कुक्षि नामक उद्यानमें जा निकला।

नन्दन वनके समान इस उद्यानकी परम मनोहर शोभाने

देखकर उसका मन मोहित हो गया। विविध प्रकारके हरभरे वृ
पहाड़ोंपर खड़े थे। उनपर अनेक भांतिकी लतायें लटक रह
थी।

रंग-बिरंगे फूल फूले हुए थे, सैकड़ों ढंगके फल लगे हुए थे, क
मोर नाच रहे थे, कहीं तोते बोल रहे थे कहीं झीलों और सरोवरों
पर हंस क्रीड़ा कर रहे थे, मछलियां उछल रही थीं जलजन्तु
विहार कर रहे थे, पनडुब्बियां डुबकी लगा रही थीं, बगुले कपटी
मुनियोंकी भांति एक पांवसे खड़े होकर ध्यान लगाये हुए थे
किनारोंपर तितलियां उड़ रही थीं।

कहीं हाथियोंका झुण्ड घूम रहा था, कहीं सिंह गर्ज रहे थे
कहीं नील गायें चर रही थीं, कहीं हिरन भी फुदक रहे थे, कहीं
सांप आकाशमें फन उठाये आंख मूंदे हुए हवा पी रहे थे, परन्तु सभी
शान्त निश्चल थे, किसीमें भी क्रोध या भय एवं वैर विरोधका लेश
न था।

यद्यपि घाम कड़ा न था, तो भी महीना चैतका था, सूर्यक
तेज कुछ-कुछ बढ़ चला था, इसीलिये वह राजा वनकी छवि देखत
हुआ एक घनी छायावाले वटवृक्षके नीचे जाकर खड़ा हो गया।

उस वृक्षके परोपकारपर वह राजा अपनेको न्यौछावर करने
लगा, कहीं उसकी डालियोंपर बन्दर सो रहे थे, कहीं उसके
कोटरोंमें अगणित जीव निवास कर रहे थे कहीं उसके दूलोंके
भौंरे बस रहे थे

थोड़ा ठहरके बाद अचानक उस राजाने देखा कि उस वृक्षके

पास ही सुख भोग करनेके योग्य अति सुकुमार एक साधु भी बैठा हुआ है। उस मुनिको देखते ही से यह बात झलकती थी कि वह पण्डित और जितेन्द्रिय है।

महात्माके अलौकिक रूपको देखकर वह राजा बड़े अचम्भेमें पड़ गया, किन्तु बड़े प्रेम और भक्ति-भावके साथ उस मुनिको राजाने प्रणाम किया, फिर उसकी प्रदक्षिणा करके अति नम्रतासे हाथोंको जोड़कर थोड़ी दूरपर बैठ गया, और बोला, हे मुने! आपने इस तरुण अवस्थामें ही क्यों सन्यास धारण किया? आपका यह समय तो भोग-विलास करनेका है, विरक्त कैसे हुए? आप क्यों अचानक बड़े श्रमसे मिलने योग्य श्रमण पदवीको प्राप्त हुए। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है इस कारण कृपा कर इस अपने भेदको मुझे सुनाइये।

मुनिने कहा हे राजन्! यदि आपको कुछ कुतूहल है तो सुनिये, मैं अनाथ हूं, संसारमें मेरा कोई रक्षक नहीं है और न अपना संगी-साथी कोई दिखलाई पड़ता है जो मेरे ऊपर कृपाकर कुछ सहायता करे, मुझे ढाढ़स दे।

मुनिके वचनको सुनकर मगधाधिपति राजा श्रेणिक हँस पड़ा, और सिर झुकाकर बोला, हे मुने! आप स्वयं ऋद्धि-सिद्धियोंके नाथ हैं आप अनाथ कैसे हैं? तो भी यदि आप अपनेको अनाथ समझते हैं तो मैं आपका नाथ बन सकता हूं मेरी सहायतासे संसारमें जितने सुख मनुष्यके लिये आवश्यक हैं सब आपको सुलभ हो जायँगे, मित्रोंकी भरमार हो जायगी, किसी बातकी कमी न रहेगी। आप

चैनके साथ इस मनुष्य जन्मका सुख लीजिये। क्यों इस भोगके समयमें योगकी साधना कर रहे हैं ?

इस तरह अज्ञान और अहंकारसे भरे हुए राजाके वचनको सुनकर मुनिने कहा, राजन्! आप क्या कहते हैं ? आप तो अपनी आत्माके भी नाथ नहीं हैं, जो मनुष्य अपने ऊपर भी अपना अधिकार नहीं रख सकता वह दूसरेपर क्या अधिकार करेगा ? इसलिये त्रिकालमें भी आप मेरे नाथ नहीं हो सकते। क्या अन्धा भी दूसरेको रास्ता बता सकता है ? इसी भांति इस साधुकी बातको सुनकर वह राजा बड़े अचम्भेमें पड़ गया क्योंकि पहले कभी भी ऐसी बात किसीने न कही थी। इसलिये उसका माथा चक्कर खाने लगा, घबड़ा कर वह बड़ी फुर्तीसे बोला।

महात्मन! ऐसी बात क्यों कहते हैं, मेरे पास अत्यधिक हाथी-घोड़े हैं, नौकर-चाकर हैं; खजाना है, वनिता हैं, ग्राम नगर हैं जितने भोग मनुष्योंके भोगनेके हैं मैं उन्हें भोग रहा हूं, मेरी आज्ञाको सभी मानते हैं। मैं नरेन्द्र हूं, सभी प्रकारके सुख-साधन मेरे पास हैं, हे मुनि! जिसके पास इतने धन धान्य हों जो सब प्रकारके सुखका उपभोग कर रहा हो वह अनाथ कैसे हो सकता है ? आप महात्मा होकर भी ऐसी झूठी बात क्यों कहते हैं ?

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

पिताके पास धन और रत्नोंकी कमी नहीं थी। मेरे घरवाले मुझे बड़ा प्यार करते थे, मेरा बालकपन बहुत सुखसे बीता जा रहा था, अब मैं किशोर अवस्थाको प्राप्त हुआ तो एक दिन अचानक मेरी आँखें बड़े वेगसे दुखने लगीं, सब शरीर जलने लगा, रोम रोममें काँटेसे चुभने लगे, मैं बेचैन होकर रोने कराहने लगा, जैसे शत्रुके चोखे चोखे तीरोंके लगनेसे देहमें क्लेश होता है उसी भांति मुझे भी पीड़ा होने लगी। मैं बिना पानीके मछलीकी तरह छटपटाने लगा। मेरी कमर टूटी पड़ती थी, सिर टूक-टूक-सा होकर मानो उड़ा जाता था। मनोरथ भंग हो गया, मानो मेरे ऊपर वज्र आ गिरा।

हे राजन्! मेरे पिता मुझे प्राणके सम समझते थे, फिर देर क्यों लगती? मेरे पिताजीकी आज्ञासे प्राण और धनको लूटनेवाले बड़े-बड़े वैद्य, मन्त्र तन्त्रके जाननेवाले बड़े-बड़े पूजक, झाड़ फूंक करनेवाले नामी नामी सयाने, और चीर फाड़ करनेवाले जर्राह भी पलकी पलमें मेरे पास आ धमके, और मुझे रोगसे छुड़ानेके लिये वे सबके सब मिलकर अनेक प्रकारसे दवा दारू करने लगे, विविध उपाय होने लगे, परन्तु मुझे कुछ भी लाभ न हुआ, तनिक भी रोग न घटा, यही मेरी अनाथता है।

राजन! मेरी माता और मेरे पिता दोनोंने ही मेरे दुःखसे दुःखी होकर मेरे लिये भूमि [illegible] धान्य लुटाना आरम्भ कर दिया और [illegible] उनके [illegible] दान भी देने लगा, मेरे सगे भाई [illegible] सभी सिसक सिसक कर रोने लगा, बहिनें भी [illegible] और [illegible] पर मेरा दुःख कुछ भी

न घटा अर्थात् मेरे दुःखका बांटनेवाला कोई भी न दिखलाई पड़ा, इस लिये मैंने अपनेको अनाथ समझ लिया।

मेरे संगी साथी दास दासियां सभी रोने कलपनेके सिवा कुछ भी काम न आये। राजन्! मेरी स्त्री भी सदा मुझसे प्रेम किया करती थी, और पतिव्रता भी थी, लेकिन वह मेरी कुछ भी सहायता न कर सकी. उसने केवल नहाना धोना खाना पीना शृंगार करना और सोना भी छोड़ दिया, अर्थात् सब सुखोंसे विमुख हो गई. हां इतना उस बालाने अवश्य किया कि मुझे छोड़कर पलभर भी कहीं न गई, और स्नेह भरे अपने नेत्रके जलसे मेरी छाती सींचती रही, उसका कमलसा मुख सूख गया, किन्तु उससे क्या हुआ कुछ भी नहीं, मेरा दुःख ज्योंका त्यों बना रहा इस कारण मैंने अपनेको अनाथ समझ लिया।

हे भूप! तब मैंने सोच विचार करके अपने मनमें कहा कि इस असार संसारमें बारम्बार दुःख ही दुःखका अनुभव करना पड़ेगा, सुखका लेश मात्र भी न होगा इसलिये यदि इस कठोर दुःखसे सदाके लिये छूटना चाहूं तो अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके शान्त रूप होकर मनके संकल्प विकल्पको छोड़ दूं तथा घरसे अलग होकर सन्यासको ले लूं जिससे कि संसारमें रहते हुए भी सदाके लिये सब दुःखोंसे छूट जाऊं

हे नरेन्द्र! इसी भांति सोचते विचारते मुझे नींद आ गई, [illegible] सहायता की और [illegible] [illegible] मेरी पीड़ा अब [illegible] [illegible] सबेरा [illegible] मैंने अपनेको नीरोग पाया

और अपने भाई-बन्धोंसे पूछकर झटपट सन्यास ग्रहण कर लिया, हे राजन्! तबसे अपने और परायेका मैं स्वामी हो गया, समस्त स्थावर जंगमोंका राजाओं प्रजाओंका नाथ बन गया, इस एकान्त वासके सामने अमरावती भी फीकी पड़ जाती है।

हे राजन्! आप अब भी कुछ समझे या नहीं ? अपनी आत्मा ही नरकके निकट बहनेवाली वैतरणी नदी है, आत्मा ही पहाड़की चोटीके समान सेमर या शाल्मली वृक्ष है, वही कामधेनु है और वही स्वर्गका नन्दन वन है। राजन्! यदि अपनी आत्मा दुराचारिणी हुई तो शत्रु रूप होकर दुख देनेवाली और सुखका नाश करनेवाली हो जाती है, और यदि वह अच्छी हुई तो सुखको देनेवाली दुखका नाश करनेवाली हो जाती है, अर्थात् दुख सुखका मूल अपनी आत्मा है दूसरेको दोष देना व्यर्थ है, इसीलिये मैंने सन्यास ग्रहण करके अपनी आत्माको अच्छे पथपर स्थित कर दिया है क्योंकि शुद्ध स्वभावयुक्त आत्मा चिन्तामणि कल्पतरुसे भी बढ़कर मनोरथको पूर्ण करनेवाली है।

राजाके मुखके भावको देखकर मुनिने समझ लिया कि अभी राजाका ज्ञान नेत्र नहीं खुला और न उपदेशसे उसे तृप्ति हुई है इसीलिये महात्माने उससे फिर कहा—

हे नृप! जिस एक प्रकारकी अनाथताके नाश होनेसे मैं नाथ हुआ हूं उसे आप सुन चुके। अब मैं अपनी तथा औरोंकी दूसरी अनाथताको कहता हूं स्थिर मन होकर उसको भी सुनिये, क्योंकि वह भी नष्ट हो चुकी है तभी तो मैं स्वयं अपना स्वामी हुआ हूं।

जैसे जंगली लोग कांचको उत्तम पदार्थ समझ कर आभूषण बनाते हैं और नागरिक मनुष्य उसे तुच्छ वस्तु समझ कर फेंक देते हैं उसी भांति बेसमझ मनुष्य भले ही कपटी साधुके फेरमें पड़ जावें लेकिन जो ज्ञानवान विवेकी हैं वे कभी भी धन जोड़नेवाले मुनिका सत्कार नहीं करते।

हे भूप! जो धूर्त मुनि संसारको ठग कर पेट भरनेके लिये या विषय-भोग करनेके लिये सिर मुड़वा कर या बालोंको बढ़ा भस्म रमाकर साधुओंके चिह्नोंको बनाता है और मर्यादा हीन होकर अर्थात् पतित होकर भी अपनेको मर्यादा पुरुषोत्तम कहता है उसका कभी स्वप्नमें भी निस्तार नहीं हो सकता, उसको चिरकाल तक नरकके कठिन कष्टोंको रो-रोकर भोगना पड़ता है।

हे राजन्। जसे हलाहल विषका पीनेवाला नहीं जी सकता, जैसे अनाड़ी आदमी बंबगोले, बंदूक आदिको चलाकर स्वयं कालके गालमें चले जाते हैं इसी भांति धर्मकी ओटमें जो कपटी मुनि विषयके रसको चखनेके लिये चलता है उसे आत्म-घाती समझना चाहिये क्योंकि जो इन्द्रियोंको तृप्त करनेमें लगा रहता है वह उन्हींके हाथोंका शिकार बन जाता है और जिसके सिरपर विषयरूपी भूत चढ़ जाता है वह कभी नहीं बच सकता, उसकी इस लोकमें निन्दा और पर-लोकमें बड़ी दुर्गति होती है।

हे राजन। मुनि वेषधारी जो ठग हाथकी रेखाओंके फल बताकर स्वप्नके गुण दोष बताकर और मंगल, शनैश्चर आदि ग्रहोंके फल सुना कर तथा झाड-फूक करके किसीको धन किसीको पुत्र देनेकी

प्रतिज्ञा करता है या तन्त्र-मन्त्र दिखलाता हुआ सिद्ध बनकर सीधे मनुष्योंसे अपनी मुट्ठी गरम करता है, उस नीचको अपने कुकर्मोंका फल भोगते समय कहीं भी शरण नहीं मिलता, वह अन्यतम घोर नरकमें भी धक्के खाता फिरता है।

हे राजन्! अत्यन्त मूढ़ाईके कारण महा अज्ञानके वश हो वह द्रव्य मुनि शीलसे रहित हो सदा दुखी रहता है और उलटे फलको पाता है अर्थात् सुगतिके बदले उसको दुर्गति मिलती है और वह असाधु दम्भके मारे मौन होकर मिथ्या आचारको दिखलाता हुआ घोर नरकमें जाकर गिरता है अर्थात् सूकरादिक महापतित पशुओंकी योनिमें जन्म पाता है।

हे नृप! जो नीच प्रकृतिका मनुष्य मनुष्योंके न खाने योग्य अयोग्यतासे उपजे हुए अपवित्र वस्तुओंको भी मांग-मांगकर खाता है, पेटके वश हो हिंसासे तैयार हुए मांसादिक भी नहीं छोड़ता सब गटक जाता है। जैसे आग अच्छे-बुरे सब तरहके पदार्थोंको जलाकर राख कर देती है उस तरह वह अविचारी साधु भी सब प्रकारकी वस्तुओंको खाकर मल-मूत्र कर देता है लेकिन सर्वभक्षी होनेका परिणाम बहुत ही भयङ्कर और बुरा होता है अर्थात् जब वह मुनि इस ननरको छोड़ता है तो उसे यमके अतिरिक्त और कोई भी उससे बचा नहीं सकता।

हे नृप! जिसने अपने आत्माको निष्फल बना रखा है अर्थात् उसको [illegible] कर दिया है तो उस [illegible] मुनिके [illegible] कहनेके लिये किसी प्रकार आवश्यकता नहीं है।

वह स्वयं अपने गलेको काट रहा है, जब उसका मरण समय आवेगा तो उसके जितने कुकर्म हैं सबके सब एक-एक करके उसके नेत्रके सामने आकर खड़े हो जायंगे तब उसको अपनी भूलोंका ज्ञान होगा, लेकिन लाभ उधर भी न होगा केवल अपनी मूर्खतापर पछता-पछता कर रोना भर हाथ लगेगा, इसलिये पहले ही सजग हो जाना चाहिये।

हे राजन्! उस दुष्ट मुनिकी अन्तकालमें भी श्रमणकी रुचि व्यर्थ ही है जिसने अपने सम्पूर्ण जीवनमें आत्माको दुरात्मा बना रखा है क्योंकि वह दुरात्मा होनेपर भी अपनेको ज्ञानी और महात्मा समझता है अर्थात् यदि वह मोहको छोड़कर अपनेको दुष्ट समझता हुआ निन्दित मानता हुआ मरण समयमें आराधन करता तो उसे कुछ फल भी हो जाता, लेकिन वैसा करनेसे न उसे इस लोकका सुख मिला न परलोक ही का, जैसे धोबीका कुत्ता न घरका न घाटका वैसे ही वह कपटी मुनि भी दोनों लोकोंसे हाथ धो बैठता है, वह दूसरोंको स्वर्ग-सुख भोगते देखकर मन ही मन झींखता है और अपनेको धिक्कारता है।

हे भूप! इस प्रकार वह विषयी मुनि महात्माओंको लात मार करके मनमाना [illegible] आचार करता हुआ संसारमें अपनी [illegible] [illegible] हे सुन्दर [illegible] [illegible] [illegible] फल भी बड़ा [illegible] [illegible] मनका [illegible] [illegible] पछताना

होता है, चीलकी भांति करुण स्वरोंसे रो-रोकर विलाप करना पड़ता है।

हे बुद्धिमान राजन्! इन मेरी उत्तमोत्तम बातों और शिक्षाओं-को सुनकर अब आप कुशीलों और अधर्मोंके पथको छोड़ देंगे। मुझे ऐसा ही विश्वास है अर्थात् जितने बुरे कर्म हैं, झूठे आचार व्यवहार हैं, मिथ्या दंभ हैं उनसे अलग हो जायंगे क्योंकि मेरे उपदेश कोरे ढकोसले नहीं, न उनमें कुछ जाल फरेबकी बातें हैं, वे बड़े गूढ़ ज्ञानोंसे गुणोंसे भरे हुए हैं अतः आप ज्ञानियों और सिद्ध तथा जिन महात्माओंके अच्छे पथसे चलेंगे?

हे राजन! अच्छे चाल चलन और ज्ञानसे युक्त होकर महा निर्ग्रंथके पथपर रहनेसे और जैसा कि पहले मैंने आचरण रूप मार्गसे चलकर संयमको बतलाया है उसका पालन करके और अपने सब प्रकारके कर्मोंका क्षय करके संकल्प विकल्प हीन होकर त्रिविध दुःखोंसे बचता हुआ मनुष्य उस अति विशाल और सर्वोत्तम मुक्ति स्थानको प्राप्त होता है जहां कि जिनोत्तम वीर लोग जा चुके हैं।

बड़े तेजस्वी जितेन्द्रिय महा तपोधन दृढ़ संकल्प और बड़े ही यशस्वी उन महा मुनि अनाथजीसे सुनने महा निर्ग्रन्थीय महा-श्रुतकी यहांपर इस प्रकार विस्तार सह सुनकर राजा श्रेणिक बड़े ही प्रसन्न हुआ और हाथ [illegible] कहकर [illegible] नमस्कार [illegible]

[illegible]

और सच है। निःसन्देह मेरे ऊपर आपकी बड़ी भारी कृपा हुई है। मेरी और संसारकी भलाईके लिये ही आपने अच्छे-अच्छे उपदेश दिये हैं जिनके बदलेमें मैं कुछ भी आप जैसे प्रभुवरकी सेवा नहीं कर सकता। यद्यपि महात्मा लोगोंका यह काम ही है कि अपने उपदेशोंका सदावर्त हरघड़ी चलाते रहें तथापि मैं आपसे कभी स्वप्नमें भी उऋण नहीं हो सकता।

हे महामुने! आपकी माता और पिता दोनों ही धन्य हैं यह कौशाम्बी नगरी धन्य है, जहां कि आप ऐसे योगिराज उत्पन्न हुए। प्रभो! आपका मनुष्य योनिमें प्रकट होना सफल हो गया और उभय लोकोंमें जितने पदार्थ सुखदायक हैं आपके लिये सभी सुलभ हो गये आप महा मुनिवर हैं। आपके दर्शनसे पाप दूर होता है। आप अपने कुटुम्बियोंके सहित सनाथ हो गये क्योंकि आप जिनोंत्तमोंके पवित्र पथपर स्थित हैं।

हे संयत! आप अनाथोंके नाथ अशरणके शरण हैं, सब राजाओंके राजा और महाराजाओंके महाराज हैं, आप ज्ञानके सूर्य हैं, क्षमाके सागर हैं, हे महाभाग! मेरी आत्मा और देहके ऊपर, बाल्बच्चोंके ऊपर तथा सकल राजपाटके ऊपर आपका पूरा-पूरा अधिकार है जैसा चाहें उपदेश करें मुझे स्वीकृत है।

हे प्रभो। अज्ञानवश होकर पहले आपको मैंने पहिचाना नहीं था, इसी कारण अति तुच्छ और भद्दे प्रश्नोंको आपसे मैंने किया था, और तपस्याको छोड़कर भोग-विलास करनेको मैंने आपको व्यर्थ सलाह भी दी थी, मैंने आपका ध्यान भंग कर

आपकी तपस्यामें विघ्न भी डाला था, इसलिये मैं अपराधी हूं। दण्ड के योग हूं तथापि प्रभो! मेरी सब भूलोंको भूल जाइये, साधु सरलचित्त होते हैं अतः क्षमादान दीजिये।

इस प्रकार राजाके अहङ्कारको चूर्ण हुआ देखकर और उसके विनीत वचनोंको सुनकर मुनिराज मुस्कराते हुए फिर ध्यानमग्न हो गये, राजा श्रेणिक भी मुनीन्द्रके उपदेश रूपी अमृतपानसे तृप्त होकर बड़ी भक्तिसे उनकी प्रदक्षिणा की, दण्डवत की, फिर रोमाञ्चित होता हुआ अपने हृदयमें बारम्बार अपने भाग्यको सराहता हुआ, घरको चला गया और विशुद्ध दर्शनका पाथेय पाकर सुविचार मग्न होकर विचरने लगा। वहां पहुंचकर मुनिसिंहके उपदेशोंकी आवृत्तिको सुनकर राजाके परिजन पुरजन भी धर्मानुरागी हो गये। यदि दोनोंको मुनिसिंह और राजसिंह कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

नाग देवता

इसके शरीरकी चमक फौलादकी तरह खूब काली है। आंखों-में इतना भयंकर और मृत्युकर विष है कि—जिसे देखकर ही प्राणीका शरीर विषमय होकर यमका अतिथि हो जाता है। जिस समय यह फुंफकारता है तब आसपासके हरे-हरे घास और बड़े-बड़े वृक्ष तक जलभुनकर ढेर हो जाते हैं। यही कारण है कि—मनुष्योंने इस रास्तेसे आना-जाना तक छोड़ दिया है। हजारों गारुड़ी और मंत्रवादियोंने अपनी जानें गँवा दीं, पर चण्डकौशिक किसीके हाथ न आया। इस कराल मूर्तिके डसने मात्रसे सैकड़ों स्त्रियोंकी चूड़ियां नष्ट हो गईं थीं और वे अपने सौभाग्य जीवनसे हाथ धो बैठीं। इस वनका नाम सबने मिलकर यमलोक रख दिया है। आह! कितना भारी जंगल कि जिसे इसने जला-जलाकर मैदान बना दिया है। जहां पहले १८ भार वनस्पतियां उगतीं, फलतीं, फूलती थीं अब वहां भूमि निर्जीव सी हो गई है। विषज्वालाओंकी आंचकी तरह वहां सदा धुआं ही निकलता रहता है।

* * * *

ग्वाल—पूज्यपाद महाराज! महाराज! आप इधर कहाँ पधारनेवाले हैं?

तरुण तपस्वी—मैं यमलोक जा रहा हूं।

ग्वाल—भगवन! आपके पैरों पड़ता हूं। आप उधर न जाइयेगा, वहां तो भयंकर काली पिरड रहता है। जिसने हजारों मनुष्यों और असंख्य पशुओंका खून पिया है, तथा उन्हें मौतके घाट उतारा है। अतः मेरे आराध्य देव! उस ओर न जाइयेगा।

तरुण तपस्वी—भाई! मुझे मत रोक, मैं उधर अवश्य जाऊंगा, और मुझे तो अवश्य उस नागके बिल तक ही जाना है। क्योंकि आज मेरी समाधि उसके बिलपर ही जमेगी।

ग्वाल—(रो कर) मेरे हृदयके स्वामिन! मैं आपको रोक तो नहीं सकता, परन्तु उसके बिल तक जानेसे आपकी यह कुन्दन-सी काया कुम्हला जायगी और भारी असाता पहुँचनेकी सम्भावना है। आपका यह पवित्र शरीर क्रुद्ध उस कलि-कुण्डमें आहुति जाने योग्य नहीं है। वहांके लिये तो भगवन! हमसे निकम्मे विषय-कीट ही बहुत हैं। आप तो संसारको कल्प-सुरी बनाने आये हैं। जगत्की त्रुटियोंकी पूर्ति कीजिये। जगत्में ज्ञानका विकास कीजिये। पर इस कुमौत न मरियेगा।

तरुण तपस्वी—भाई! यह शरीर तो अनित्य, क्षणभंगुर और अपावन है। इसके [illegible] 'निष्प्राण' होना है और [illegible]

वस्तु काम नहीं आती। मेरी जिन्दगी प्राणी मात्रकी भलाईके लिये है। अर्थात् सबको निपुणितर बनाऊंगा। मेरा जीवन अज्ञान तममें भूले हुएको सत मार्गपर लानेके लिये है। यदि मेरे शरीरकी बलिसे उनकी भूलका पर्दा टूट जाय तो मैं समझता हूं कि—यह सौदा मुझे सस्ता ही पड़ा है।

*　　*　　*　　*

नाग बिलसे बाहर निकल आया। अपने सामने किसी तेजस्वी पुरुषकी आकृतिको देखकर दंग रह गया, पर फिर भी मारे क्रोधके वह कांप उठा, १०८ डिग्री गुस्सेका पारा चढ़ गया। आंखें भी बीरबहूटीकी तरह लाल-लाल हो गईं। सहसा तपस्वीकी ओर रोषकी दृष्टिसे देखा, मगर उन्हें कुछ भी असर नहीं हुआ। उसने आगे बढ़कर फूंक मारी और आशीविषका बादल फैला दिया। मगर उस प्रशान्तमूर्ति महावीरको उसका भी कुछ असर न हुआ। यह देख उसे कुछ भान हुआ कि—क्या बात है जो मेरी आंखों और फूंकारें आज परशुरामकी परशुकी भांति ठंडी हो गईं। भूखा सिंह जब अपने भोजनपर जिस प्रकार लिपट पड़ता है; वही गति [illegible] विकराल [illegible] फन फटकार [illegible] हुआ फिर फुंकार करता है, जिससे विषका तीखा धुंआ बन गया, और आकाश मंडलको भी काला [illegible] तरह [illegible] कर दिया। मगर भगवान महावीरके [illegible] कुछ भी [illegible] न [illegible] नहीं [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] दिया। [illegible]

उसे प्रभुका चेहरा गूढ़ समस्या मालूम देने लगा। उसकी अकलने कुछ काम नहीं किया। पर कुछ होश आनेपर उसकी दृष्टि प्रभुके मुख-मण्डलपर जमने लगी। प्रभुके होंठ हिलकर शनैः-शनैः खुल गये इनकी वाणीका नाद गंगाके कलकल रवकी तरह गूंजने लगा। शब्दकी मधुरिमा मधुसे भी अनन्त गुनी मीठी है। मानो यह मधुरता मेरे कानों तक आ गयी है। और परदेके क्षेत्रको अमृतकी तरह सींचकर तर कर दिया है। प्रभुकी बातें सबकी सब साफ और सीधी सादी हैं। सब कुछ समझमें आगया है। नाम बताकर मानों निधड़क कह रहे हैं कि चण्डकौशिक! ओ प्रिय नागराज! कुछ समझ! कुछ होशकर! कुछ अपने आपेमें आ और चेतकर! "अब भी समय है। मोहकी भ्रमणा दूरकर, यह मोह तुमसे अनादि कालसे चिमटा हुआ है। और तू इसी से कर्म मलमें व्याप्त हो रहा है। उस मोह विभ्रम को मिटाकर भेद विज्ञानका उदय कर क्योंकि तू महाऋद्धिका निधान है, मेरी तरह तुममें भी उजियाला प्रगट होगा। जो बाहरी धूमधामसे अच्छा है। वह द्वन्द्व दशामें निकालकर स्थिर भावको प्रधानता देनेवाला है, जिससे अपने ही विलासका सुमधुर स्वाद मिलने लगेगा। अपनेको सत्यार्थ मय जान। जिससे कर्मादि पुद्गलको अपना बनाना छोड़ देगा, यह भेद विज्ञानकी क्रिया आत्मामें भिन्न जगतका ज्ञान करायगी। जिस प्रकार अग्नि मिट्टी और पत्थरसे सुवर्णको अलग कर देता है

चण्डकौशिक! आगेकी पंक्तिपर! मेरी सिखावन ध्यान दे!

शायद कभी पहलेकी देखी हुई है। परन्तु स्मरण नहीं होता कि—कहाँ देखी। किस स्थानपर देखी। (जाति स्मरण ज्ञान होनेपर) ओ हो! यह स्वरूप तो मेरा ही है, अब मुझे स्मृति हो उठी, यह मैं ही हूं। यह संयमकी आकृति बनाई गई थी। परन्तु राग, द्वेष, कषायने उस विधि गतिको बिगाड़ दिया। जिसका दंड यह अबोध पशु योनि है। हाय! विषयकी गांठको खोल रहा हूं। भगवन्! जगत्में शत्रुता बांध बैठा, जिनका बारी-बारीसे बदला देना है। मुझे सबका कर्ज चुकाना है। जब खाल खिंचाई होगी तब याद आयगा कि—किसीकी जान लेना चैनकी बंशी बजाना नहीं है। भगवन्! अब तो अपने कियेका पछतावा होने लगा है। चिन्तित हूं कि इन लोगोंसे किस भांति निबटूंगा। समुद्र पार जाना है पर नौका टूटी हुई है। लम्बा प्रवास करना है, पर खानेको कुछ पासमें खर्ची न हुई। दो कोमल भुजाओंसे समुद्र पार क्योंकर जाया जाय।

नागराजकी दो आंखोंसे आंसुओंकी धारा बहने लगीं। महावीर बोले कि नागराज! अब किनारे आया ही चाहता है, घबराओ मत। आत्माभिलाषा पूर्ण करो, समाधि (उपशान्त मार्ग) पर भावके आकृतिकी पहचान होती है। अतः उसीपर आकर जम जाओ। समयकी डोर पतंग-डोरकी तरह अब तक तो अपने ही हाथ है।

नागराज यह सुनते-सुनते शान्त हो गया, समाधि भावकी पराकाष्ठाको पहुंचने लगा। विषको वम दिया और साथ-साथ कषायको भी। अनन्त अमृत उसके हाथ आ गया। मुंह बंबीमें रखकर

छिपा लिया। मानो अब वह अपने पापी मुंहको क्या कहकर दिखा-यगा, शरीरका सब भाग बाहर है। मगर मानुषोत्तरकी तरह सबका सब स्थिर। जीवित रहनेकी आस और मौतका डर अब जाता रहा। अब तो यमके ही दांत उखाड़ बाहर करना बाकी है।

※ ※ * ※

ग्वालोंने छिपकर इस धर्मकी लड़ाईको आद्यन्त देख लिया था। जिसमें एकको भारी हार हुई। मगर जीतनेवालेने भी सिरके साटे विजय लक्ष्मी पाई है। इन्होंने वस्तीमें आकर सबसे कह दिया कि—भगवान् ज्ञातपुत्र महावीर भगवानकी जय! आज उन्होंने चण्डकौशिकको जीतकर उसे अपना अनन्य भक्त बना लिया है। यह सब हमारी आंखों देखी घटना है। हार जानेके कारण सांप मुंह छिपाये पड़ा है। उसे अब बड़ी शर्म आने लगी है। विश्वास न हो तो जाकर देख सकते हो।

लोकोंका समुदाय सावनके बादलोंकी तरह दर्शनार्थ उमड़ पड़ा। आनकी आनमें सबने आकर प्रभुकी चरण वन्दना की. और बोले धन्य प्रभो! आपने जनताका एक भारी संकट दूर किया है। विभो! पापीको भी पापसे मुक्त किया और हमें भी जान-मालसे बाल बाल बचा लिया। बलीहारी! वारी जायें अपने महावीर परमात्मापर। जो सबके संकट निवारणके लिये ही आया है। नाथ! आपने इनपर वह उपकार किया जो उपकार अन्धेपर वैद्यका होता है। आप स्वयं तरण तारण हैं आपने अपने धर्मके जहाजमें एक पापी सर्पको भी विरामके लिये स्थान दिया। नाथके नाथ!

आपके दर्बारमें जाति भेदको स्थान नहीं है। हम तो जातिके चक्रमें फँसे जा रहे थे, मगर आपने हमको हाथों हाथ उबारा है। तारक! आप हमारे सच्चे मार्ग दर्शक हैं। बन्द मार्गको आप खोल चुके हैं। आप ही इस मार्गको निर्भय बना रहे हैं। धर्म-धर्मिन! आपकी जय हो! आपकी जय! हमारे लिये सुखकर हुई। हमारे आत्मारूपीप्रभुके ज्ञान गर्भमें उत्कृष्ट साहसशीलता, सहिष्णुता, कृपा तथा मैत्री भाव आदि सबका सब छिपा हुआ था। वह आपके द्वारा सब व्यक्त हुआ है।

*   *   *   *

इधर लोक धीरे-धीरे सांपको आकर देखते हैं तो एकदम छम्व-सांपको देखकर डरते हैं और भागते हैं। इनकी कुशल बीबीकी उसका मुंह बिलमें है, जिससे अधिक भयकी जरूरत नहीं पड़ती थी। बहुतसे गुणके अनुमोदक हैं, वे सोचते हैं कि— समझनेका और प्रभु भक्तिका अधिकार प्राणी मात्रमें है। इसे भूला न समझो जो सन्ध्यामें घर आ जावे। मगर एक पक्ष तो उसपर रोष खाकर पत्थर बरसा रहा है। जिससे चोट लगनेपर कई जगहसे शरीर घायल हो गया है। कई यह कहनेवाले भी थे कि बेचारेको मार क्यों रहा है? निर्दय है? तब वह कहता है कि —अरे क्यों न मारूँ इसने मेरा बेटा डंस लिया था। मेरी स्त्री, मेरा बाप, मेरा यह मेरा वह डस लिया। अब अब हम इसके धर्मात्मा बननेपर हैं ट पत्थर, डण्डेमें मेरा काम है। अपनी पूरी दीनताका परिचय दे रहे हैं। पर महानुभाव तो यह कहता कि —नहीं, नहीं, अब तो भगवान

अछूत और जैन

देहलीके किनारी बाजारको सब जानते हैं, जहां गोटा किनारी मिलता है, सिळमे, सितारे और घुएंका तथा पक्का माल सब लोक यहा ही से खरीदते हैं। अक्सर विवाह शादी के लिये इन आवश्यक वस्तुओंको साथ इसी बाजारमें पूरी होती है, बांगरके तथा कुरुक्षेत्र भूमिके निवासी मनुष्य करोंको तैयार यहींसे बनवा कर ले जाते हैं। यह जनानी पोशाक होती है, कपड़ा रेशमी होता है, ४०००० कीड़ोंको मारनेके बाद आध सेर रेशम तैयार होता है, इसी ही पाप वस्तकी यह घाघरी होती है। जिस पर जरदोजी काम कराने यहा ही आना पड़ता है। ग्राम्य जनोंमें इस मालकी खपत रहनेके कारण बहुतसे लोगोंने इसीकी दुकानें खोल ली है। परन्तु लाला मेहरचन्द्रजी जैन गोटेवालेकी दुकान इस बाजारमें पुरानी दुकान गिनी जाती है ये जैसे श्रावक हैं वैसे ही जबानके भी सच्चे और प्रतिष्ठित गिने जाते हैं। इसीसे इनका माल खूब ही बिकता है, आपका मोल और तोल धर्मके कांटेमें ४२

तोले पाव रत्तीकी शक्तिके अनुसार ठीक उतरता था। इसीलिये आप एक साखुनी (एक बात कहनेवाला) के नामसे प्रसिद्ध हो गये थे। दुकानपर इतनी भीड़ लग जाती थी कि इन्हें जरा सी फुर्सत भी नहीं मिलती थी। १६ घंटे आपकी दुकानमें बसन्तमें कोयलकी टूहुककी तरह रुपयोंकी मीठी ध्वनि सुनाई पड़ती थी। मन्दीके समय भी इन्हें कुछ नहीं कह सकता था। इसीसे अड़ोस-पड़ोस के दुकानदार इनसे जरा डाह खाने लग गये थे।

* * * *

होलीके समय दिल्लीमें बाहरसे आनेवाले देहातियोंकी वह दुर्गत बनाई जाती है जो गज बन्दरने बयाकी की थी। इसीसे लाला बंशीलाल बांगरू भी इन होलीके रंगीले भडुवोंसे बचते-छिपते किनारी बाजारमें लाला मेहरचन्दजीकी दुकानपर बड़ी ही कठिनाईसे आ सके। आते ही मुनीमजीसे पूछा कि—लालाजी कहां हैं? मुनीमजी बोले कि—आजकल बारहदरी (महावीर जैन भवन) में साधु महात्मा न होनेके कारण ऊपरके कमरेमें ही सामायिक (ध्यान) कर रहे हैं। लाला बंशीलाल बांगरू प्रसन्न होकर उनके दर्शन करनेके लिये ऊपरकी सीढ़ियोंपर धीरे-धीरे बढ़ने लगे।

* * * *

ऊपरकी छतपर दरवाजेके पर्देमेंसे झांककर मोटे मोटाकर कुछ कल्लूह लियार जैसे अड़बंगे नीचे उतर आते हैं। इनमें किसीके हाथमें पिचकारी है, किसीने अपनी हथेलीपर लाल मिर्चोंका लेप

लगा रक्खा है। किसीने तवेकी स्याही तेलसे हाथोंमें चुपड़ ली है। सेठजीको कायोत्सर्ग (प्राणायाम) करते देख सब ठट्ठा मारकर खिलखिला उठे। जिनमेंसे एकने आगे बढ़कर अपने दोनों हाथोंको उनके मुंहपर मल दिया, जिससे हाथका स्याह रंग उनके मुंहपर लग गया। एकने तड़ाकसे जूते मारना आरम्भ कर दिया। परन्तु नीच मटरूने तो लाल मिर्चोंकी भरी हुई एक अंगुलीपर थूक लगाकर उसे आंखोंमें ही रगड़ दिया। पीछेसे क्षुद्र छदामीने डिबियामेंसे मह-रौलीकी पहाड़ीका काला विच्छू मोचनेसे पकड़कर उनकी धोतीके अडूसेमें रख दिया। फिर क्या था उसने गुस्सा खाकर तड़ातड़ कई डंक मार दिये जिससे उनके शरीरमें दुःसह्य वेदना होने लगी। परन्तु लालाजीकी दृष्टि इन परिषहोंके पड़नेपर भी नाककी डंडीपर ही जमी रही।

लाला बंशीलाल बागरू-ऊपर चढ़ने-चढ़ते इस काण्डको पूर्णतया देख चुके थे। फिर क्या था मारे गुस्सेके काबूसे बाहर हो गये। जेबसे कुछ निकालकर तुरत फायर करनेको थे ही कि उन्हें किसीने आकर पीछेसे पकड़ लिया, यह गुण्डा पार्टीभी भयभीत होकर ९-२-११ हो गयी, और उसी दम वह स्थान फिर शान्तिपूर्ण हो गया।

* * *

बिच्छू उग्र और विषैला था डंक भी कई जगह मारे थे। परन्तु सेठजीके नाकपर बल तक न पड़ा, भृकुटी उसी तरह सौम्य और सम था। बंशीलाल इस उत्कृष्ट सहिष्णुता और समभावनाकी

साक्षात् जीवित मूर्तिको देखकर अवाक् सा रह गया मन ही मन श्रद्धाके फूल चढ़ाकर प्रशंसा करता हुआ सोचने लगा कि—यदि इतनी हँसी दिल्लगी कोई मुझसे कर जाय तो सा·········न देता। परन्तु धन्य मेहेरचन्द! आपने अपने स्थायी भाव और गम्भीर शान्तिसे मेरे कलुषित भावोंको भी बदल दिया, और वह भी सदाके लिये। आपका आदर्शमय तथा शान्त जीवन मुझ पामरके काम भी आ गया। अब मैं भी आपकी-सी पवित्र और निर्दोष सामायिक मौन रहकर नित्यप्रति किया करूंगा। अब लोक दिखावा न करूंगा, और आपकी तरह समताको खूब निबाहूंगा।

* * * *

यों चलते-चलते सेठजीका सामायिक काल समाप्त हो गया। नहा-धोकर खादीके साफ कपड़े पहिनकर कोठीकी गद्दीमें आ बैठे। मुनीमजी बिच्छूजड़ीका लेप लगा चुका है। लाला बंसीलालने कुछ माल खरीद कर लिया। तथा ५००१) रुपया नकद गिनकर फुर्सत पाई। इतनेमें माल पैक हो गया। धेलेमें लदवाकर स्टेशनपर भिजवा दिया, और अब दोनों सधर्मी बन्धु कुछ धर्मगोष्ठी कर ही रहे थे कि—इतनेमें एक मेहतरने आकर सेठजीको आदाब अर्ज किया। और चबूतरेसे नीचे हटकर खड़ा हो गया।

सेठजी—कहो भाई [illegible] चौधरी क्या चाहते हो ?

[illegible]—सरकार आपसे कुछ माँगने आया हूँ !

सेठजी—[illegible]

मैं तो सदैव तैयार हूँ !

खचेडू—मेरा एक बीस वर्षकी आयुका अविवाहित लड़का है। क्या कहूं सेठ जी ! बड़ा ही परिश्रमी है। सुन्दर और आज्ञानुवर्ती है, धारादरीमें कमाने जाया करता है। वहांके साधुओंकी संगति हो जानेसे मांस और मदिरा ही नहीं बल्कि रातका खाना तक भी छोड़ दिया है, जमीकंद खानेका तो बिल्कुल अटकाव है। बड़ा सीधा सादा और सानफुटा पहलवानसा है। किसीका काम काज करनेसे कभी मुँह नहीं मोडता। सदा नीची गर्दन झुकाकर चलता है। सबेरे ही स्नान करके नित्य सन्ध्या करता है फिर कहीं काम पर जाता है। कभी किसीसे तकरार मदारका काम नहीं। अपने काममें धुन लगाये रहता है। आपके धर्मका एक-एक आदेश पाल रहा है। जैन सिद्धान्तके सीखनेका उसे बड़ा ही चाव है। महात्मा लोगों और आपके तफैलसे पक्का जैन बनता जा रहा है। अतः कृपा करके यदि आप अपनी कला उसे प्रदान कर दें तो मैं आपका चिरऋणी होकर रहूंगा। जल्दी जवाब दीजिये इस विषयमें आपकी क्या मर्जी है? अपनी इच्छाके अनुकूल उत्तर पानेके लिये मैं आतुर हो रहा हूं। कारण आप दिल्ली नगरमें एक सच्चे जैन हैं। आपके यहां एकेन्द्रियसे लगाकर पंचेन्द्रिय तके पांच ही जाति मानी गई हैं। जैन इन बाह्य जातियों और वर्णोंको नहीं मानता। क्योंकि भगवान ज्ञातनन्दन महावीर प्रभुने इन पांच जातियोंके अतिरिक्त छठवीं कोई जाति नहीं बताई है। आकार तथा शरीर रचनामें और सन्तान प्राप्त करनेमें मनुष्यमात्रमें एकसी शक्ति है।

* * * *

यह सुनकर लाला बंशीलाल बांगलू तो क्रोधमें जल भुन कर पतला हुआ जा रहा था। उसके नथने फूल गये आंखें सिंदूरकी तरह लाल हो गईं। सारे शरीरमें पसीना-पसीना होगया। रह रहकर जीमें यह आता था कि—इस बदमाशको गालियां दे मारूं, और इतने जूते लगाऊं कि—चांदकी खाल गंजी हो जाय। यह क्या बकता है जैसे छोटा मुँह बड़ी बात हो। परन्तु लालाजीकी शर्मने उसे ऐसा करनेसे रोक दिया, और सेठजी उस भंगीसे यह बोले कि—देवानुप्रिय! मुझे अपनी कला किसी न किसीको तो अवश्य सौंप ही देनी है, परन्तु तुम्हारा लड़का भी औरोंकी तरह सुन्दर-धर्मात्मा, सुन्दर-युवक और मनुष्य ही है। तब मुझे उसके लिये कब ना ही हो सकती है। किसी भी प्राणीके साथ घृणाका बर्ताव करना एक सम्यग्दृष्टि श्रावकके लिये तो कभी शोभा नहीं देता।

पर मुझे सच पूछो तो अपनी कला सौंप देनेमें कोई इन्कार भी नहीं है। यदि आसपासके मेरे ये पड़ौसी बन्धु और मेरी जातिके भाईबन्धु इसमें कुछ भी बाधक न हों तो मैं इस आदर्श कलको अभी कर डालूं। पर क्या करूं मैं जिस जातिमें रहता हूं उनका बनाया हुआ नियम पालन मुझे बलात्कार करना पड़ता है, और इस २० वीं शताब्दीमें यह अनिवार्य-सा हो गया है। भगवान महावीरकी आज्ञाओंको भुलाकर वे मनुष्यको ऊंच-नीच कर रहे हैं किन्तु मैं तो यही कहता हूं कि मनुष्यको ऊंच-नीच मत करो। मन्दिरके नीचे आज जैनोंका भी हाथ रुक रहा है पर यदि मनुष्यत्व [illegible] आज ही जाति भेद दूर कर [illegible] [illegible] [illegible] अपना [illegible]

नष्ट हो जाती है। अतः जैन और लक्ष्मीपात्र होकर दूसरी ओर अपने भाइयोंकी तथा देशवासियोंकी दुःखद दशा सहन नहीं कर सकता। आज ही सदागार खुलवा देता हूं। जिससे अन्न और वस्त्रका दुखिया कोई न रह पावे, और यह सब कुछ करते हुए उन्हें कुछ भी अन्तर न पड़ा।

* * * *

भयावह अन्धकारसे रात भरपूर है। कई घरोंसे कराहनेकी आवाज आ रही है। नगर-पुत्रोंके पेटमें जठराग्नि लंकाकी-सी आग निकल कर उन्हें जला रही है। तीन-तीन दिन तकके उपवास निर्जला एकादशी और संवत्सरीकी तरह अपने आप हो जाते हैं। लोगोंके घरोंमें निर्जला एकादशी स्थान पाकर बस रहे हैं। पर वे स्वेच्छासे अन्न लेने नहीं जाते। कारण उनकी मध्यम स्थिति है। इज्जत-आबरूवाले हैं, सुंदर कपड़े पहनते हैं अवश्य, परन्तु पेट खाली है। न मांग सकते हैं, न श्रमिक होकर श्रम ही कर सकते हैं। दुःखका बोझ लेकर रातमें पूरी लड़ लाती है। इस प्रकार दुर्भिक्षने इन्हें पूरा निढाल बना दिया है। बेचारे [illegible] कुछ [illegible] लेकर खा लेते हैं और अधपेट भूखे पड़े जाते हैं। [illegible] पूरा [illegible] है परन्तु [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

पिघल जाता है। इस रोदनने गलीवालोंकी बदनामीको और भी कराल बना डाला।

* * * *

"माँ! अरी ओ माँ! कल कुछ मेरे लिये खानेका प्रबन्ध करेगी या नहीं। सच बता दे। तीन दिनसे फाकामें ही रहती है। कल यदि जलपान भी न दिया तो याद रख सबेरे ही प्राण दे दूंगा।"

"बेटे! मेरी जान! सबर कर। तेरे पिता दिल्ली गये हैं। कहीं न कहीं नौकरी अवश्य लग गई होगी। एक मास पूरा होने आया है। आशा ही नहीं बल्कि ठीक कहती हूँ कि—कलकी डाकमें कुछ रुपया अवश्य आवेगा, फिर दिनमें तीन बार जलपान कराऊंगी मेरे लाल! पर अधीर न हो मेरे बेटे! जरा सबर सन्तोष कर सबरका धन गरीबोंका धन है। वे इसके ही सहारे सुखमें दिन काटकर जीवित रह सकते हैं।"

"मा! मैं सच कहता हूँ सबर करनेसे भूख नहीं मिटती। सबर करते-करते आज तीसरा दिन बीता रहा हूँ। अब और दांतके अन्दर पेट पड़ जानेसे दोनों रूठे बैठे हैं। भला इस सबरका भी कभी अन्त आवेगा। देखती हो मा! इन हवेलियोंसे बराबर तीनों समय धुआं उठा करता है। हलवा पूरी बननेकी गन्ध आती रहती है। मगर इनमें बदनसीबोंके गलीका आग जलानी भी नहीं जिससे रोजका संकट तो मिट जाता। मा! ये कहनेको तो [illegible] है मगर इनके [illegible] और [illegible] नहीं। ये [illegible] [illegible] और हम [illegible] क्या हम

उनके बिरादर भाई नहीं हैं? क्या उन्हें हमारा तरस नहीं आता? हाय रोटी! भूखा मरा जा रहा हूं! मेरी अच्छी अम्मां! मैं भूखों मरा!

* * * *

ओ मनसुखा! जरा ६ नंबरकी गलीसे बुधसेनको तो बुला ला।

मनसुखा 'जो हुकुम' कहकर बुधसेनको कन्धेपर रखकर ले आया। लड़का कन्धेसे उतर कर एक तरफ प्रणाम करके बेसुध हो गया। मगर उसे जल्दी ही मुंहपर गुलाब छिड़ककर होश दिलाया, शुद्ध गर्म दूध पिलाया लड़केको शुद्ध बुध आई और सचेत हुआ तब हरखचंदरायने जेबसे १००) रुपया निकाल कर बुधसेनको देते हुए कहा कि—ये रुपये हमारे जुगल बिहारी मुनीमके हाथ तुम्हारे बापने भेजे हैं। अतः ले जाओ. और यह भी कहला भेजा है कि १००) रुपया मासिक वेतनपर जंगलीमल केदारनाथके यहां मुनीम हो गया हूं। अतः चिन्ता न करना। जिस वस्तुकी इच्छा हो सेठजीकी दुकानसे ले जाया करना. मैं १००) रुपया इन्होंकी दुकानपर भेजा करूंगा। महीनेकी अन्नकी निधिको उनसे ले जाया करना। अतः अपने पिताके आदेशके अनुसार १००) रुपया प्रति पूर्णिमाको ले जाया करना समझे। यह कहकर १००) रुपया देकर बुधसेनको विदा किया। रुपया पाकर उसके शरीरमें बिजली-सी दौड़ गई, और वह हसन-हसन घरकी ओर भाग गया।

* * * *

रातके नौ बजे हैं, सामायिक पूर्ण हो गई है, वे स्वयं अपने एक गूंगे नौकरके साथ नित्यके नियमानुसार कपड़े और रुपयेकी थैली रोज लिवा ले जाते हैं, प्रत्येक नागरिकके घरमें रुपयों और मोहरोंकी पुड़ियायें इस ढंगसे डलवा देते हैं कि—जिससे किसीको उनका परिचय ज्ञान न हो, तथा किसीके घर छींट, लट्ठरिया, खादी, मलमल, कम्बल आदि अनेक भांतिके थान डाल देते हैं। यह सब काम १२ बजनेके बाद पूरा करके फिर अपने शयनागारमें आकर विश्राम लेते हैं। यह उनकी नित्यकी चर्या हो गई थी। इतना कुछ किये बिना उन्हें चैन तक न पड़ता था।

सवेरा होते ही गली-महल्लेवाले आपसमें यह बातें करते कि—कोई देवता फिरका फिरोजपुर पर प्रसन्न हो गया है, जो हमारे घरोंमें रुपयों, मोहरों और कपड़ोंकी वर्षा सदैव कर जाता है। धन्य भारत देव! तुम इस समय अभेदरूपसे हिन्दू-मुस्लिम नर देवोंकी शुभ सेवा बजा रहे हो। अतः तुम ईश्वर भी हो और खुदा भी, तथा साथ-साथ कर्म फल भी हो।

इसी खुदा और ईश्वर तथा कर्मने हमारे शरीरमें जान डाली है। वर्ना इस दुर्भिक्षमें तड़पकर कभी के मर गये होते।

× × × ×

आज नाईराजा सबके घरोंमें बुलौआ दे आया है। नियत समय-पर सब लोक सेठ हरकंठराय दिगम्बर जैनके भव्य भवनमें आकर उपस्थित हो गये हैं। आज घरका चौक मानव मेदनीसे खचाखच भर गया है। तिल धरनेको भी जगह नहीं है। सब लोगोंके

है। यह कह १-१ पुड़िया सबकी जेबोंमें रख दी। बाहर आनेपर लोग क्या देखते हैं कि—सेठकी माताजी आज लड्डुओं की प्रभावना कर रही है। सबने माताके हाथसे एक-एक मोदक भी लिया। घर आकर क्या देखते हैं कि—पुड़ियाओंसे निकले हैं मोती और मोदकोंसे मुहरें, आज इस दरिद्र भारतको ऐसे-ऐसे लाखों हरकंदरायकी भारी आवश्यकता है।

कसौटी

जंगलमें सन्ध्या समय हो गया था, और उसकी छाया चारों ओर खड़े हुए वृक्षोंपर जम रही थी। कलरव करते हुए पक्षी अपने घोंसलोंकी ओर पीछे लौटे आ रहे थे। सूर्यदेवकी किरणें पश्चिमगिरिकी भेंट करने तैयार हो रही थीं, और इस जंगलमें चारों ओर शान्तिका साम्राज्य फैल रहा था।

ऐसे शान्त समयमें पद्मासन जमाकर अपने घुटनोंके ऊपर अपने दोनों हाथ रखकर मस्तक ऊंचा किये दृष्टिको नासिकाके अग्रभागपर स्थिर करते हुए जामुनके वृक्षकी छायामें बुद्धदेव समाधिमें मग्न थे।

उस कुंजमें शान्ति इतनी अधिक फैल रही थी, और वहांका वातावरण प्रेम-प्रवाहसे इतना अधिक विस्मृत था कि यदि कोई अचानक अनजान नास्तिक पुरुष भी इस मार्गसे चला जाता तो वह भी अपनी अकड़ छोड़कर नम्र और शान्त बनकर भगवानके भूमिपर अवश्य झुककर नत हुआ

है। यह कह १-१ पुड़िया सबकी जेबोंमें रख दी। बाहर आनेपर लोग क्या देखते हैं कि—सेठकी माताजी आज लड्डुओं की प्रभावना कर रही है। सबने माताके हाथसे एक-एक मोदक भी लिया। घर आकर क्या देखते हैं कि—पुड़ियाओंसे निकलते हैं मोती और मोदकोंसे मुहरें, आज इस दरिद्र भारतको ऐसे-ऐसे लाखों हरकंटरायकी भारी आवश्यकता है।

कसौटी

जंगलमें सन्ध्या समय हो गया था, और उसकी छाया चारों ओर खड़े हुए वृक्षोंपर जम रही थी। कलरव करते हुए पक्षी अपने घोंसलोंकी ओर पीछे लौट आ रहे थे। सूर्यदेवकी किरणें पश्चिमगिरिकी भेंट करने तैयार हो रही थीं, और उस जंगलमें चारों ओर शान्तिका साम्राज्य फैल रहा था।

ऐसे शान्त समयमें पद्मासन लगाकर अपने घुटनोंके ऊपर अपने दोनों हाथ रखकर मस्तक ऊंचा किये दृष्टिको नासिकाके अग्रभागपर स्थिर करते हुए जामुनके वृक्षकी छायामें बुद्धदेव समाधिमें मग्न थे।

उस कुंजमें शान्ति इतनी अधिक फैल रही थी और वहांका वातावरण प्रेम-प्रवाहसे इतना अधिक विस्तृत था कि यदि कोई अचानक अनजान मनुष्य दूर भी इस मार्गसे चला जाता तो [illegible]

विकरालसे विकराल प्राणी भी उस पवित्र महात्माके अद्भुत योग शक्तिके प्रबल प्रतापसे वहां आते ही अपना जातीय दुस्वभाव छोड़ देते और नम्र तथा विनीत हिरन जैसे बन जाते थे।

इतनेमें एक हिरणी जो अपने बच्चोंके साथ खेलती थी, और जिसने उस महात्माकी कक्षके नीचे आश्रय ले रक्खा था, उसने चमक कर ऊपरकी ओर नजर उठाकर देखा।

इसने दूरसे पैरोंकी कुछ आहट सुनी, किसीको उसने वहां शीघ्रता सूचक पैरोंसे आते देखा, थोड़ी ही देरमें वहां एक टोली आ गई। उस टोलीका नायक एक युवक था। जो देखनेमें और शकल-सूरतमें गेहुंए रंगका था। परन्तु उसकी मुद्रा प्रतापशालिनी थी। उसने जरदोजी पोशाक पहन रक्खी थी, और एक बहुमूल्य माला उसके गलेमें अजब शोभा दे रही थी।

अपने साथ आये हुए लोक समुदायको एक स्थलपर खड़े रहनेकी आज्ञा देकर वह स्वयं कुटिरकी ओर आ रहा था। जब वह महात्माकी भव्य, तेजस्वी और शान्त मूर्तिके सामने आया और अत्यन्त भक्तिके भावसे उस तरुण तपस्वीके पैरोंमें गिर पड़ा। फिर वह खड़ा हो गया और नीची निगाह करकर, दोनों हाथ मिलाकर वह पूर्ण भक्ति करता हुआ शान्त चित्तसे कुछ समय तक इसी प्रकार खड़ा रहा।

वृद्ध [illegible] परन्तु उनका निर्मल दृष्टिमें से प्रेमका [illegible]

महात्मन्! आपके लिये भाव पूर्वक नमस्कार! कंचन नामक दूर-वर्ती देशसे मैं यहां आया हूं। मेरा नाम चन्द्रसिंह है। मैं राज-पुत्र हूं, राज्यका अधिकारी हूं. आपकी सेवामें कुछ मांगने आया हूं; भगवन्! जबसे आपका नाम सुना है तबसे मैंने ज़रासा भी आराम नहीं लिया है। एवं मेरे चित्तको शान्ति भी नहीं आती, मेरे राज्य, महल, कोष मुझे अब सुखी नहीं कर सकते। मेरे मित्र एवं मेरी स्त्रियोंसे मेरे मन और इन्द्रियोंको सन्तोष नहीं, अब तो मैं त्याग जीवन बितानेके लिये आतुर हूं। कृपालो! मुझे अपने एक पामर शिष्यके रूपमें स्वीकार करें। मेरे जैसा सच्चा भक्त आपको भाग्यसे ही मिल रहा है।

बुद्धदेव अपनी शान्तिको संभाले हुए थे, दयापूर्ण दृष्टि इस युवककी ओर फेर दी। परन्तु मुंहसे एक अक्षर भी नहीं कहा। चन्द्रसिंहने अपनी करुण कहानी आगाड़ी बढ़ाई—

देव! गुरो! आप मुझे कुछ भी उत्तर नहीं दे रहे हो? क्या मैं इस अधिकारका पात्र नहीं? प्रभो! मैंने अपनी बाल्या-वस्थासे ही निष्कलंक जीवन बिताया है [illegible] किया है। [illegible]

[illegible]

अनुसरण क्योंकर करूंगा। यह जन सब कुछ सहनेको तैयार है, शोध्यत्वको पानेके लिये मुझे अब अगाड़ी क्या करना चाहिये वही बतायें तो बड़ी कृपा हो।

'खोज कर! तुझे मिलेगा'

'किसकी खोज करू' युवकने उदासीकी आवाजमें कहा।

गौतम बुद्धने कुछ भी जवाब नहीं दिया, तथापि वह युवक बोलता ही रहा, 'तथास्तु'। मैं तलाश करूंगा, आपका आशय मुझे कसौटीपर लगानेसे तो नहीं है?

'कदाचित् हो'

'आपसे फिर कब आकर मिल सकूंगा?

'चतुर्मास बीतनेपर सातमें मासमें'

चन्द्रसिंहने मस्तक नवा दिया, मुँहसे कुछ न बोल सका और जमीनपर सो गया, और वह इस स्थितिमें बहुत समय तक पड़ा रहा। कुछ समयके अनन्तर वह धीरे-धीरे उठ बैठा। परन्तु उसकी बोलती बंद थी, और वह हिली हुई हिरनी उस महात्माकी गोदमें मस्तक रखकर अपने बच्चोंके पास ऊंघ गई।

बुद्धदेव फिर समाधि मग्न हो गये।

* * * *

वेशा ऋतु आकर चली गयी, बातकी बातमें मास मास बीत गये, और उसी जामुनके वृक्षके नीचे उसी कुंजमें बुद्धदेव बैठे थे, सूर्य अस्त होनेकी तयारीमें था, आकाशमें बादलोंकी कुछ रेखाएं दीख पड़ती थी, और किसी नये तूफानकी निशानीके रूपमें

बीस विरवे सफल हुआ हूं। मैंने अब तक शुद्ध जीवन ही बिताया है। सब प्रकारके भोग विलास और वैभवका मैंने निषेध कर दिया है। इन्द्रियोंके विषयोंकी ओर मैंने नितान्त उदासीन भाव रक्खा है। मेरे महलके वैभव और सुखकी ओर भी मैंने लक्ष्य नहीं दिया। मेरा समय केवल एकान्तमें लम्बे समय तक ध्यान करनेमें ही गया है। अब मुझमें किसी प्रकारकी अशुद्धि नहीं है। विभो! इस समय तो मुझे अपने शिष्यके रूपमें स्वीकार करोगे?

'न'

चन्द्रसिंह यह सुनकर एकदम घबरा गया, उसके मनमें भयंकर खेद व्याप्त हो गया, और अपने रूमालसे मुख छिपा लिया। उसकी आंखोंमें उस समय आंसू भर आये थे, और बहुत देर तक एक शब्द भी मुँहसे न बोल सका, परन्तु धीरतासे काम लेकर कम्पित स्वरमें इस तरह बोलना आरम्भ किया।

महात्मन्! क्या आप अपने इस तुच्छ सेवकसे न बोलोगे? कृपालो! क्या नकार कहनेका कुछ कारण न बताओगे?

बुद्धदेव समाधिसे अभी ही उठे थे, चन्द्रसिंहको देखकर चीता उसे घुरकने लगा था। उसने अपने प्रेममय हाथके संकेतसे उसे शांत किया मेघकी गर्जना बंद हो चुकी थी, और बुद्धदेवके मुखसे निकलनेवाले शब्दोंको सुननेके लिये उस समय पवन भी शांत हो गया था। बुद्धदेवने मधुर शब्दोंमें उत्तर दिया।

"उत्तम राजकुमार! जिस कसौटीसे तुझे पार होना था, वह कसौटी बाह्य जगत्में मिलनेवाली कसौटीके समान नहीं। मैंने

तुझे तेरे सुख वैभव और तेरी स्त्रीके त्यागनेके लिये कब कहा था। एवं यतिके समान शरीरको कष्ट देकर रहनेका भी मेरा आदेश न था। जिस कसौटीसे तुझे पार होना था, वह कसौटी तेरे पूर्व जन्मके कितने ही कार्योंके परिणाम रूप स्वभावसे ही आई हुई है। अपने महलमें वापिस जाओ! और एक सद्गुणी मनुष्यके समान अपना जीवन बिताओ! अभी शिष्य बननेके योग्य नहीं हुआ है?

उसके कपोलोंपरसे मारे शर्मके पसीना टपकने लगा, और बड़ी ही आतुरतासे चन्द्रसिंहने यह प्रश्न किया—

भगवन! मैं किस कसौटीमें से निष्फल निकला हूं, कृपा करके आप समझायेंगे? जिससे कि मुझे अधिक शर्म आयगी। तथापि मैं उससे जरा भी घबरानेवाला नहीं, नाथ! मैं तो सच्चे अन्तःकरणसे प्रकाशकी शोधमें हूं।"

बुद्धदेवने जवाब दिया कि—मैं तुझे वह भी बताऊंगा। पहली कसौटी झूठा कलंक लगानेकी थी। हे उत्तम गुणवाले राजकुमार तेरे निजके महलमें ही तूने अपने पिताकी राजसभामें क्या वह अपराध नहीं किया था? जिसका कि तुझपर ही अभियोग लगाया गया था। क्या वह विषय तुझे याद है? लोगोंके मनमें इस विषयमें सन्देह क्या है? [illegible] वह सब [illegible] परि-णाम रूप [illegible] तुझपर आया हुआ है। अब [illegible] सहन करना चाहिए। यह विचार [illegible] अपना [illegible]

हृदय अपनी ओर आकर्षित करना आरंभ किया। उसकी मित्रताका सम्पादन करनेके लिये अत्यन्त आतुर था, इसीसे वह तुझे प्रीतिमें विघ्न कर्ता मालूम देने लगा। यज्ञको तू यज्ञके लिये न चाहता था। बल्कि यज्ञके साथ की हुई मैत्रीसे मिलनेवाले आनन्दके लिये ही तू उसपर प्रीति रखता था। तुझे उसकी उपाधिके ऊपर अनुराग था, और इस रागके मूलको उखेड़कर फेंकनेके बदले, और उस भट्टिक और यज्ञके अन्दर बढ़नेवाली प्रीतिसे आनन्द माननेके स्थानपर तेरे हृदयमें एक प्रकारका भारी तूफान आ निकला। भट्टिकके मार्गमें यथाशक्य विघ्न डालनेके लिये तूने कुछ भी कसर न छोड़ी, और तेरे हृदयसे क्रोधका प्रवाह निकल कर भट्टिककी तरह बहने लगा जिसे तेरे लिये दूसरी निष्फलताका कारण कहना चाहिये।

चन्द्रसिंहने बड़े वेगसे उत्तर दिया—

"मैं यह जानता था कि—भट्टिक स्वार्थके लिये यज्ञकी प्रीतिकी शोधमें है, अपने मित्रको चेतावनी देना और भट्टिकके जालसे उसका बचाव करना मेरा कर्त[illegible] था।"

[illegible]

अनुरागकी वस्तुका त्याग करनेके लिये हँसते-हँसते तैयार रहना चाहिये। उसे स्वार्थ और ईर्ष्याका निकम्मापन अपने हृदयमेंसे खींचकर निकाल डालना चाहिये। इस प्रकार करते जा रहे हो और हृदयमें रक्तकी धार बह निकले और जगत् शून्य मालूम देनेपर भी वह सब कुछ उसे शान्त चित्तसे सहन करना चाहिये। श्रेष्ठ राजपुत्र! तेरे पिताका खजाना, इन्द्रिय सुख और जगत्‌की कीर्ति ये सब तुझे आकर्षित करके अपनी ओर खींचनेकी सामर्थ्य नहीं रखते, और इससे उनका त्याग करनेमें तूने कोई महत्वका कार्य नहीं किया है। जब असली त्याग और आत्म-भोग देनेका प्रसंग आया तब तेरा धैर्य छूट गया। आत्म-भोगका दिव्य साफा तू न बांध सका। जो प्रेम प्रेमपात्रका ही सदैव कल्याण चाहता है, जो प्रेम अर्पण तो करता है परन्तु बदला लेनेकी आशा नहीं रखता, उस प्रेमको प्रसंग पड़नेपर तू नहीं दिखा सका है।"

चन्द्रसिंहने अपना मस्तक फिर झुका लिया; अब क्या करना चाहिये यह उसे बिलकुल न सूझा, तब उस ऋषिकी ओर दृष्टि डालकर इस प्रकार निवेदन करने लगा—

भगवन्! एक बार फिरसे आज्ञा कर दीजिये मुझे एक बार पुनः और धर्ममें डाल दीजिये, मेरे ज्ञानके चक्षुओंके आगे पर्दा पड़ गया है अब जो अन्धकार आपकी दृष्टिके सामने दीख पड़ता है, इससे भी अधिक गहरा अन्धकार मेरी दृष्टिको अन्धा बना दिया है [illegible] दीजिये

वृद्धत्व [illegible] कसौटीमें निष्फल हो

और विरोध विन्दु उसके हृदयमें मालूम पड़ते हैं; शुद्धता यह कुछ सद्गुण नहीं है, यह तो अशुद्ध मार्गका निवृत्ति रूप है। मेरा शिष्य ऐसी निवृत्ति यानी शुद्धताको विशेष महत्व नहीं देता। जीवनकी शुद्धताके साथ यदि प्रेम और दयाका मिश्रण न हुआ हो तो वही शुद्धता, अभिमान और कठोरताका कारण हो पड़ती है और एक मुमुक्षुके उन्नत मार्गमें बाधक हो जाती है, उस समय उसे शुद्धता न कहकर बल्कि शुद्धताकी छाया समझना चाहिये। पवित्र राजपुत्र! तुम अपने प्रवासके अन्दर सन्ध्या कालमें हिमालयके अनुपम पवित्र तथा ऊंचे शिखरोंकी ओर नजर डालते हुए आये हो, उस बर्फसे ढंके हुए शिखरोंपर प्रत्येक वस्तु ठंडी होकर निर्जीव भासती है, परन्तु एकदम वहां भिन्न-भिन्न प्रकारके चमकीले तथा भड़कीले रंग प्रगट हो जाते हैं, और चक्षु तथा हृदयको आनन्द पूर्वक लुभानेवाले प्रतीत होते हैं, इसीका नाम पवित्रता है और यही शुभतम शुद्धता है। प्रेम रहित पवित्रता मृत शरीरको ओढ़ाई हुई सफेद चद्दरसे अधिक विशेषता नहीं रखती। यदि उसके साथ प्रेम चमक उठे तो वही शुद्धताकी प्रणालिका द्वारा जीवनका प्रवाह चारों ओर सुन्दर ढंगसे बहने लगता है।

चन्द्रसिंहकी आंखोंमें आंसू भर आये, उत्तरमें एक भी शब्द न बोल सका, और उसी जगह गिर पड़ा, फिर उसने दबी आवाजसे गला साफ करनेका प्रयत्न करते हुए यह कहा—

कृपालो! दीनबन्धो! मुझपर एक बार फिर विशेष कृपा करो, मुझे एक बार फिरसे प्रयत्न करने दो, योग्य अधिकारीके लिये

और अधिकार प्रदान किये, और पास-पासमें बने हुए दो भव्य महल उन दोनोंको दिये गये, उसने अपनी स्त्री नन्दाकी शोध कराकर पुनः राजगृहमें स्थापन कर दिया, जिससे लोगोंके दिल खट्टे पड़ गये। उसके पिताके समयके पुराने नौकरोंको बड़बड़ाने-का समय मिल गया, और लोक उसके विषयमें झूठी-झूठी अफवाहें उड़ाने लगे। एक बार जागृत होकर शंकायें बढ़ने लगीं, और सारे शहरमें उसके कार्योंके लिये सहसा टीकायें होने लगीं, उसपर अत्याचारोंका अभियोग लगाये जाने लगा।

गुप्त आरोप उसपर लगानेपर भी चन्द्रसिंह ज़रा भी विचलित न हुआ। जिस प्रकार पहले गुलाबकी सुगन्ध ग्रहण की थी, उसी भांति अब कांटोंसे लगनेवाले घरोंटोंको भी उसने सहन किया, इतना ही नहीं बल्कि सत्ताके लोभी उसके छोटे भाईने उसकी राजगद्दीको पचा डालनेके हेतु एक गुप्त मंडल खड़ा कर दिया। पहले उसने मंडल द्वारा सारे नगरमें यह वातावरण फैला दिया कि—चन्द्रसिंह निरंकुश सत्ता जमाना चाहता है, उसकी सुधारक योजनायें होनेपर भी देशको ग्रहन कर डालेंगी। लोकोंको यह कहकर भ्रमणामें डाल दिया कि—इसमें एक भिक्षुका भी लगाव है, और यह पुराने रिवाजोंको जो कि वंश परम्परासे चले आ रहे हैं उन्हे मिटाकर अपने देशमें नवीन धर्म फैलाना चाहता है। इस प्रकार लोकोंको भड़का कर लोकोंका मन उसके विरुद्ध कर दिया।

एक दिन चन्द्रसिंहको यह खबर मिली कि उसको मारने के लिये षड्यन्त्र रचा गया है, परन्तु उस ज़रा-सी भी चिन्ता

होनेसे बाहर हो गये। वे राजकुमारके इस साहससे घबराये हुए भी थे।

सम्पत्ताको मिटाकर आर्द्रक तिरस्कारकी दृष्टिसे चन्द्रसिंहकी ओर देख रहा था, उसके इस तिरस्कार अथवा अपमान भरे बर्ताव की ओर उपेक्षा करता हुआ चन्द्रसिंह उसके पास गया और ताक कर उसकी आँखोंके सामने देखने लगा। उसकी आँखोंमें तिरस्कार न था, एवं दया भी न थी, उसकी आँखें गुप्त होकर आर्द्रकके भावोंको जानना चाहती थीं। बुद्धदेवने कहा था कि—"मेरा शिष्य दोषको शोधनेके स्थानपर दोषके लिये कुछ यथार्थका कारण हो तो वह उसे विशेष शोध करता है।" चन्द्रसिंह उसके पूर्व जन्मके कार्योंको ढूंढ़ रहा था सहसा उसे यह प्रतीत होने लगा कि मानो उसपर अद्भुत प्रभाव पड़ रहा है। जिसे वह एकान्तमें उसे अपने गुरुके रूपमें पहचानने लगा और उसका दिव्य आत्मा मानो उसमें प्रवेश करता हुआ भासने लगा, और वस्तुओंका छुपा रहस्य जानने लगा।"

उसने उस शूरवीर भूतकालको देखा, जिससे पूर्वकर्मों द्वारा वे दोनों एक दूसरेके साथ संकल्पके साथ बंधे हुए दीख पड़े, अज्ञानताके कारणसे होनेवाली अनेक भूल और स्खलनायें उसके दृष्टिगत पड़ने लगीं; अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाली अलग-अलग इच्छायें और इच्छाओंका [illegible] स्वरूप उत्पन्न होनेवाला दुःखका सजीव चित्र उसकी [illegible]के आगे खिंच आया, उसकी आँखोंके आगेसे आर्द्रककी [illegible] छूट गई और उसके स्थानपर अखिल मनुष्य जाति

क्योंकि उसे अपने वचनका पालन करने अवश्य आना है। प्रथम प्रातःकालकी लाल ऊषा दीख पड़नेके अनन्तर प्रभात होने लगा। अन्तमें भूतलपर चारों ओर अपनी किरण फैलाते हुए सूर्य वृक्षोंकी टहनियोंमेंसे होकर प्रकाश करने लगा।

जामुनकी शाखाओंपर बैठकर बुद्धदेवके छोटे-छोटे पक्षी भक्तोंने प्रातःकालके मधुर और आनन्दप्रद गीत सुनाने आरम्भ कर दिये, हिरणी अपने बच्चोंके साथ वहां आ पहुंची, चीते और सिंहके बच्चे उनके पास खेलने लगे और प्यारमें आकर उनके पादारविन्द चाटने लगे। कारण उस कुंजमें बुद्धदेवके प्रेम-प्रवाहसे सब प्राणी अपना-अपना जन्म-जात और स्वाभाविक वैर भाव भुला बैठे थे।

इतनेमें कुछ खड़खड़ाहट-सी हुई, शायद किसीके आनेके पैरों-की आवाज मालूम देने लगी। वही चन्द्रसिंह दूसरे क्षणमें वहां आकर खड़ा हो गया। इस बार वह अकेला ही आया था। उसके सैनिक अबकी बार उसके साथ न थे, और उसने एक भिक्षुकका रूप धारण कर रक्खा था। वह आते ही जमीनपर नम गया, और गौतम बुद्धको साष्टांग नमस्कार किया। मार्गके श्रमसे थक जानेके कारण जब वह महा कष्टसे उठा, तब आशीर्वाद देनेवालेने अपना हाथ उसके मस्तकपर फिराकर बड़ी ही ममता भरी वाणीमें कृपालु देवने यह कहा कि—

"ऐ प्यारे चन्द्रसिंह! मेरे पवित्र शिष्य! इधर आ, अब तू अधिकारी बन गया है।

आदर्श-जीवन

तीन सौ वर्ष पहले भारतमें अंग्रेजोंका सर्वव्यापी राज्य न था। जहां तहां भीमकाय कालेजोंकी बिल्डिंगें नहीं खड़ी थीं और विद्यार्थी उस समय कोट, पतलून, बूट, चश्मा घुरटके अभ्यासी भी न थे। उन दिनों जैसे काशी व्याकरणके लिये समस्त भारतमें विद्याका केन्द्र था, उसी प्रकार बंगालका नदिया प्रान्त न्याय शास्त्रके लिये अध्ययनका केन्द्र था। विद्यारण्य शर्मा तो नदियाके भूषण थे। वृद्धावस्थाके कारण उनके सब बाल पक गये थे। परन्तु नेत्रोंकी ज्योति ज्यों की त्यों थी। बस्तीके बाहर पत्तोंकी बनी हुई उनकी कुटी थी। उसीके निकट छप्परके नीचे चटाइयोंका फर्श था। वहींपर बैठकर सौ सवा सौ विद्यार्थी उनसे न्यायकी शिक्षा पाते थे। ये विद्यार्थी न कुर्ता पहिनते थे न टोपी। एक साधारण खद्दरकी धोतीका परिच्छद होता था। इनमें बंगाल, पंजाब, गुजरात आदि भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके विद्यार्थी थे। किसीसे फीस लेनेका नियम न था। प्रातःकालमें

शरीरपर लाखों रुपयेके हीरे-मोतीके आभूषण हैं। बहुत बढ़िया रेशमी वस्त्र हैं। परन्तु तुम्हारी रानीके गहने यदि उतार दिये जायँ तो नदियाकी कुछ हानि न होगी। परन्तु जिस दिन मेरी यह मैली-सी खद्दरकी धोती उतर जायगी, उस दिन नदियामें अन्धकार मच जायगा। पण्डितानीजी सतेज स्वरसे यह कहकर चल दीं।

इतनी तीव्र बात सुनते ही रानीकी मूर्च्छा जाती रही और महलमें आकर कोप भवनमें पड़ रही।

राजाने आकर कारण पूछा तब रानीने कहा कि—यह दरिद्र ब्राह्मणी मेरा अपमान कर गई है। उसे अवश्य दंड मिलना चाहिये। राजाने कहा कि—पण्डितानीजीने सत्य ही कहा है। मैं आज मर जाऊं तो मेरे स्थानपर कई अन्य राजा हो सकते हैं। परन्तु जिस दिन पण्डितजी न रहेंगे उस दिन नदियामें अवश्य अन्धकार हो जायगा। वे पण्डितजी नदिया प्रान्तके सूर्य हैं। परन्तु रानी न मानीं, उसने कहा कि—किसी तरह उसे लालच देकर तथा वैभव दिखाकर वशीभूत करना चाहिये। उस दरिद्राको खद्दरसे इतना प्रेम!

राजाने कहा—प्रिये! शान्त हो, मैं ऐसा ही प्रयत्न करूंगा जिससे पण्डितानीजीका अभिमान दूर हो।

*　　*　　*　　*

प्रातःकालका समय था, पण्डितजी अपनी पर्णकुटीमें बैठे-बैठे स्वाध्याय पढ़ रहे थे। चित्तमें अत्यन्त शान्ति पाकर भजन सुन रहे थे। एकाएक राजाने दर्शन कर प्रणाम किया। पण्डितजीने बैठे

आदर्श-भिक्षु

सेवा जितना उच्च कोटिका धर्म है, उतना ही कठिन भी है। इसे पूरा पढ़नेमें योगी जनोंको भी कभी-कभी आगा पीछा देखना पड़ता है। परन्तु जहांतक इस जूयेके नीचे कंधा न आयगा वहां तक वह कुछ भी नहीं। यदि किसीको आदर्श पुरुष बनना है तो उसे सर्वप्रथम इस भक्ति योगमें ही लगना चाहिये। यदि संसारमें अमर कीर्ति छोड़ जानेकी अभिलाषा है तो आजसे सेवकोंके रजिस्टरमें नाम लिखाये। तब संसार उसे फिर सबसे महान् समझने लगेगा। यह निस्सन्देह है कि—सच्चे दिलसे की हुई सेवासे वह व्यक्ति इन्द्र द्वारा भी प्रशंसित होता है। आओ हम आज इसीका पाठ पढ़नेके लिये एक आदर्श भिक्षुका उत्तम चरित्र पढ़कर उसे विचारें।

*　　*　　*　　*

वह शहर था, इसके बाजार मनोहर और सुन्दर थे। बाजारू भीड़में चलते समय कधेसे कधा छिलता था। उसमें धनाढ्योंकी बड़ी-

मनुष्योंतक ही सीमित न रहकर धीरे-धीरे पशु संसार तकमें भी पहुंच चुका था।

*   *   *   *

वैशाख ज्येष्ठकी गर्मी कितनी दुःसह होती है। लूसे तपकर वनके पशु जलाशयका पानी पीकर बड़की छायामें आ बैठे हैं। आनन्द और प्रेम इनका विश्राम है। जीव-जन्तुओंके सब ही प्रकार हैं। सिंह, चीता, शूअर, गाय, भैंस, बकरी, घोड़ा आदि। वृक्षके ऊपर मोर, बाज, तोता, शिकरा आदि अनेक पक्षी भी पास-पास ही बैठे किलोल कर रहे हैं और ये कभी-कभी स्वाध्यायकी धुन सुनकर मस्त हो जाते हैं। आज यह सभा अपना आदर्श खड़ा कर चुकी है। क्योंकि इन सबका मन इस समय पवित्र है। पशु होकर भी पाशविक गुण भुलाये हुए हैं। किसीको किसीसे द्वेष नहीं है। जो बात मनुष्योंमें होनी चाहिये थी वही पशुओंमें पाई जाती है। सबने एक तालाबसे पानी पीकर मानो छुत-छातका मसला उड़ा दिया है। पास-पास बैठकर भ्रातृभाव पैदा कर दिया है। वाह मुनिराज धन्य! तूने पशुओंमें भी प्रेम और अहिंसाका भाव भर दिया। बलिहारी तेरे आत्म-बलपर, कुर्बान जाऊं तेरे पवित्र तपस्तेजपर।

आज भारतको ऐसे ही मुनिओंकी आवश्यकता है चाहे वह एक ही क्यों न हो मगर सम्प्रदायोंकी ओटमें जनताको लड़ाकर मारनेवाले २००० मुनि भी निरर्थक हैं [illegible] लिये भार रूप है।

कष्ट बढ़ा आ रहा है। अभी वैद्यके यहां ले जाकर चिकित्सा कराऊंगा।

*   *   *   *

नगर निवासियोंकी आंखें चौंधिया गईं। यह चमक बिजलीसे भी अधिक थी। न रोगी है न मुनि है, न दुर्गन्ध और वमनका कोई दाग है। वहां तो चन्दनकी सुगन्ध आती है। फूलोंकी-सी महक फैल गई है। एक देव मुस्कुरा रहा है और हाथ बांधे हुए है तथा सारे बाजार मुक्तकण्ठसे प्रशंसा कर रहा है और उच्च स्वरमें मुनिकी पुनः पुनः प्रशंसा करता हुआ बता रहा है कि इस मुनिके सेवा धर्मकी प्रशंसा स्वर्ग तक फैल गई है। इन्द्र स्वयं इनका गुण-गान करता हुआ नहीं थकता। मगर मुझे निश्चय न होनेके कारण परीक्षा लेने आया था। मैंने खूब ही कसौटी की और कसौटी करते-करते थक गया तब मुझे विश्वास हो गया कि – इनके मनमें सम्प्रदाय भेद नहीं है, सेवा-भाव है। इनकी अपूर्व सेवा-सहनशीलतासे आधुनिक मुनि-जगत कुछ पाठ सीखेगा।

—सुमित्त भिक्खु।

(अजीर्णता) से हाथ पैर आदि सब अंग दुर्बल हो जायेंगे। इसी विचारको अपने मस्तकमें आने दो, और आप उपकार करनेवाले हैं या पूज्य हैं, अथवा अधिकारी हैं ऐसा दुराग्रह छोड़ दो, इसके स्थानपर सेवक बननेका पाठ सीखो। एक-दो के नहीं बल्कि सारे मानव समाजके तथा पशु संसारके तुम 'सेवक' हो, और जितनी सेवा कर सको थोड़ा है। तथा जितनी सेवा करोगे, वह आपके निजके लिये ही लाभदायक है। यह ठीक ही समझो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

जो 'उपकार' के लिये नहीं बल्के सेवा-बुद्धिसे, प्रेम-भावमें कुछ दान या उपदेश तथा किसी प्रकारका प्रकर्ष-पारमार्थिक कार्य करता है। उसमें एक प्रकारसे विलक्षण बलका प्रवेश हो जाता है कि जिस बलसे वे असाधारण चमत्कार जैसे काम भी कर सकते हैं।

यदि सत्य दृष्टिसे देखा जाय तो प्रत्येक आत्मामें अनन्त वीर्य, अनन्त शक्ति है, मगर वह 'अहं' के ढकनसे ढांप दी गई है, जिससे अब वह कैदमें है। अतः अब जो मनुष्य अपनी अनन्त शक्तिको जगानेके लिये 'अहंपद' के ढकनको दूर कर सकता है, उसकी अनादिकालसे स्वयं प्राप्त पर छिपी हुई शक्ति 'प्रगट' हो जाती है।

जितने अधिक प्रमाणमें मनुष्य निजका सामान्य [illegible] [illegible]

बदलते रहो!

लेखके ३-४ पृष्ठ लिखनेके पश्चात् जब पेंसिल घिस गई तब मैंने कलमतराशसे उसे पुनः तीक्ष्ण बनानेके लिये निश्चय किया और उसे कागजके ऊपरसे उठाकर कलमतराशके छिद्रको अर्पण कर दिया। एक मिनटके अनन्तर जब उसे बाहर निकाला और देखा तो नोकको सारी लाल-पीली हो गई है। उसे कागजपर जब चलानेके लिये इशारा किया तो वह उसमें ही घुमकर रह गई, और जब ज़रा तेज़ी दिखलाई तो कागजमें छेद कर डाला। मैं भी तुरन्त ताड़ गया कि मूक और निर्जीव वस्तु भी जब दबाव आ जाती है तब वह भी इस प्रकार विरोध (Pr…) किया करती है

* * * *

[illegible]

कोई पौद्गलिक परिणाम होता तो कागज ही क्या मेरा पुस्तक, कलम, चौकी आदि सारा ही सामान नष्ट हो गया होता।

* * * *

मैंने कहा आखिर इतना क्रोध क्यों ? इस अप्रसन्नताका कुछ कारण ? पेन्सिलने कहा कि—पहले आप यह बतायें कि—जो बर्ताव मुझसे करते हो वह अपने आपसे क्यों नहीं करते ? मैंने पूछा कौनसा बर्ताव ? उसने कहा, जब मैं घिस जाती हूं, आप मुझे तराशकर फिर कामके योग्य बना लेते हैं। अर्थात् आवश्यकतानुसार मेरी आकृतिको बदलते रहते हो। परन्तु आपकी निजी अवस्था यह है कि—सैकड़ों शताब्दियोंके पुराने विचारोंमें घिरे पड़े हैं। आवश्यकता आपको पुकार-पुकारकर विवश कर रही है कि अपनी घुनकी पुरानी आकृतिको बदलिये। परन्तु एक आप ही हैं कि इस कानसे सुनकर उस कानसे निकाल देते हो, मैंने बातें जो सुनीं तो पता लगा कि उसमें भार था, युक्ति थी, भविष्यका परिणाम था कुछ सोचने लगा था कि—पेंसिलने फिर कहा कि जब तक आप अपने उन पुराने विचारोंको काट छांटकर उनको नवीन रूप न दोगे तब तक मैं लिखनेकी नहीं। मैं हैरान, आश्चर्य, चकित हूं कि—ओह ! कुदरत ! मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त।